UNIVERSITY OF DELHI
निष्ठा धृति सत्यम्

DELHI UNIVERSITY
LIBRARY

DELHI UNI

Cl. No. J

Ac. No. 5100 8

15

Date of release for loan

This book should be returned on or before the date last stamped below. An overdue charge of one anna will be charged for each day the book is kept overtime.

किसान-कुसुमावली

खेती-बारी

लेखक

आचार्य पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित साहित्यरत्न

[भूतपूर्व प्रिंसिपल हिंदी-विद्यापीठ, प्रयाग, हेडमास्टर नार्मल स्कूल, कोटा, इंस्पेक्टर ऑफ़ स्कूल्स, साहित्य-अन्वेषक नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी और हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग तथा भूषण विमर्श, हिंदू-परिवार-मीमांसा, वीर-काव्य-संग्रह आदि अनेक ग्रंथों के यशस्वी रचयिता]

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६, लाटूश रोड

लखनऊ

प्रथमावृत्ति]   स्वाधीनता-संवत् १   [मूल्य २॥)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दिल्ली-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ, दिल्ली
२. प्रयाग-ग्रंथागार, ४०, क्रास्थवेट रोड, प्रयाग
३. काशी-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क, काशी
४. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
५. साहित्यरत्न-भंडार, सिविल लाइंस, आगरा
६. हिंदी-भवन, अस्पताल-रोड, लाहौर
७. एन्० एम्० भटनागर एंड ब्रादर्स, उदयपुर
८. दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा, त्यागरायनगर, मदरास
९. श्रीकन्हैयालाल, त्रिपोलिया-बाज़ार, जयपुर
१०. हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, हीराबाग़, पो० गिरगाँव, बंबई

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं । जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें ।

I.S.L-84
51008
J
152H7

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

समर्पण

पूज्य पितृव्य (पं० लल्लूप्रसाद दीक्षित महाराज महोदय) और पूज्य पिता (पं० भोलानाथप्रसाद दीक्षित महोदय) के श्रीचरणों में बैठकर ही इस सेवक ने कृषि-विद्या, राजनीति, साहित्य, संस्कृति और कर्मकांड की शिक्षा प्राप्त की है। आप युगल बंधुओं में जो पारस्परिक स्नेह, सौहार्द और सहयोग था, तथा आप दोनो का जो स्नेह समान रूप से इन पंक्तियों के लेखक पर जीवन-भर रहा है, उसी से अभिभूत हो उनकी स्मृति-स्वरूप यह तुच्छ भेंट आप लोगों की स्वर्गीय आत्माओं के संतोषार्थ चरण-कमलों में सादर, सभक्ति समर्पित है।

दारागंज, प्रयाग
३।११।४७

पूज्य युगल बंधुओं का परम भक्त
भगीरथ

उपोद्घात

भारत कृषि प्रधान देश है। वैदिक काल से लेकर आज तक आर्यों का प्रधान कर्म गोपालन और कृषि-कार्य ही रहा है। आज भी ७९ प्रतिशत जनता खेती करके ही यहाँ जीवन व्यतीत कर रही है। परंतु वैदिक काल में तथा उसके पश्चात् ब्राह्मण काल आदि में खेती ने जो उत्कर्ष दिखलाया था, आज वह लोप सा हो चुका है। केवल रूढ़िवाद हमें प्राचीन लकीर पीटने पर बाध्य कर रहा है। इसी का यह परिणाम हुआ कि हम इसमें कुछ भी उन्नति नहीं कर सके। शिक्षा के अभाव ने हमारे किसानों को और भी अज्ञान-दशा में जीवन व्यतीत करने के लिये मजबूर कर दिया, और हम जहाँ थे, वहाँ से एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ सके, वरन् जो कुछ ज्ञान हमें सहस्रों वर्ष के अनुभव द्वारा प्राप्त हुआ था, उसे भी हमारी संकुचित मनोवृत्तियों ने नष्टप्राय कर दिया। इसी से हमने अपने ज्ञान को आगे बढ़ाना तो दूर रहा, धीरे-धीरे भुलाकर शून्य-सा बना दिया है। इसके मुक़ाबिले में कोरिया, जापान, रूस, अमेरिका, डेनमार्क आदि देश, जो ज्ञान में इससे बहुत पीछे थे, बहुत आगे बढ़ गए हैं। उन्होंने अपनी कृषि-प्रणाली में ऐसे महत्त्व-पूर्ण परिवर्तन किए हैं, जिन्हें देखकर आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ता है। बरबैंक, हौवार्ड आदि ने अनेक प्रकार के अन्वेषण और आविष्कार करके नवीन प्रकार के उत्कृष्ट फलों तक की सृष्टि कर डाली है। आवश्यकता पड़ने पर वर्षा का उपयोग तथा विज्ञान द्वारा बाधक प्राकृतिक क्रियाओं को हटाना, फ़सल को इच्छानुसार उत्तम और समय से पहले तैयार कर लेना इत्यादि बातें उनके लिये बाएँ हाथ का खेल हो रही हैं।

इन्हीं बातों का विचार करके मेरे मन में भी यह विचार हुआ कि खेती में कुछ सुधार की दृष्टि से कोई पुस्तक ऐसी लिखी जाय, जिसे किसान सुगमता से समझ सकें, और जो उनके लिये सब प्रकार से उपयोगी सिद्ध हो। मेरी बचपन से ही खेती में अभिरुचि रही है, और अपने पूज्य पिता तथा चाचा के साथ खेती के काम में बराबर सहयोग देता रहा हूँ। कभी-कभी तो स्कूल में अध्ययन करते हुए ही खेती का पूरा भार अपने ऊपर लेकर कृषि का संचालन किया है।

बाहर शहरों में रहते हुए भी ग्राम्य जीवन से प्रेम होने के कारण खेती में अभिरुचि बराबर क़ायम रही है, और इस विषय में विचार-विमर्श द्वारा सहायक रूप में यथासाध्य कृषकों के साथ रहा हूँ। इससे मेरा अनुभव भी बराबर बढ़ता गया है।

इधर मुझे अपने छोटे बच्चे चि० प्रफुल्लकुमार को ९वीं कक्षा में कृषि-शास्त्र पढ़ाने का अवसर मिला। उस समय आधुनिक कृषि-प्रणाली पर अनेक ग्रंथों का अवलोकन करना पड़ा।

देहाती पुस्तकालयों में इस विषय पर कुछ पुस्तकें अवश्य पाई जाती हैं, परंतु उच्च कोटि की कृषि-विषयक हिंदी-पुस्तकों का अभाव ही दिखलाई देता है।

हाँ, शहरों में इस पर कुछ पुस्तकें अवश्य मिलती हैं, परंतु अमेरिका, डेनमार्क, कोरिया, रूस आदि की कृषि-प्रणाली पर यहाँ एक भी पुस्तक नहीं लिखी गई। यदि वहाँ की उन्नति और उसकी सुधार-योजना पर कुछ प्रकाश पड़ सकता, तो बहुत अच्छा होता। अच्छा हो, यदि योग्य कृषि-विद्या-विशारद, जिन्होंने उन देशों में जाकर कुछ अनुभव प्राप्त किया हो, वहाँ की कृषि-प्रणाली पर कुछ ग्रंथ लिखने का उद्योग करें।

मेरी यह पुस्तक प्रारंभिक विद्यार्थियों के लिये ही लिखी गई है,

जिसे किसानों के लिये भी उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस पुस्तक में अँगरेज़ी शब्दों का कम उपयोग किया गया है, जिससे ग्रामीण लोग इसे भले प्रकार समझ सकें, और भी किसी को इसके समझने में कठिनाई न हो।

यह पुस्तक लिखने में अनेक लेखकों की छोटी-बड़ी पुस्तकों से सहायता ली गई है, और फ़सलों तथा फलों के पेड़ों के विषय में विस्तार से विवेचन किया गया है। यथासाध्य कोई ऐसी बात नहीं छोड़ी गई है, जिसका कृषि में उपयोग होता हो। इस पुस्तक को सांगोपांग बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। यदि विद्यार्थियों और कृषकों को इससे कुछ भी लाभ हुआ, तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे कई मित्रों द्वारा प्रेरणा मिली है, अतः उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। मुख्यतया साहित्यरत्न पं० सुंदरलाल दीक्षित एम्० ए० से जो प्रति को फ़ेयर करने तथा चित्रादि बनाने में अच्छी सहायता मिली है, अतः उनका अत्यंत कृतज्ञ हूँ।

दारागंज, प्रयाग
२० । ७ । ४२

भगीरथप्रसाद दीक्षित

सूची

पृष्ठ

१. कृषि का महत्त्व १
२. पौधों का जीवन ६
३. ज़मीन १०
४. जुताई २१
५. खाद २४
६. बीज ४५
७. पौधे और पेड़ के अवयव ५८
८. पौधे की विशेषताएँ तथा अन्य आवश्यक बातें ... ६७
९. फ़सल की हानिकारक बीमारियाँ और कीड़े ... ७१
१०. खेती के औज़ार ७५
११. जल-वायु ९०
१२. सिंचाई १००
१३. फ़सलें ११०
१४. तरकारियाँ १७२
१५. पैवंद लगाना १९६
१६. निराई या सोहनी १९८
१७. खर-पतवार २००
१८. फ़सल को फेर-बदलकर बोना २०२
१९. बज़ार में रखना २०५
२०. पशु-पालन २०७
२१. पशुओं के रोग २२०
२२. बाग़बानी २२७
२३. पेड़ों के रोग २६४

कृषि का महत्त्व

"उत्तम खेती, मध्यम बान,
निकृष्ट चाकरी, भीख निदान।"

हिंदी की यह कहावत कितनी साभिप्राय और महत्त्व-पूर्ण है कि देखकर आश्चर्य होता है। इतनी छोटी-सी कहावत में सहस्रों वर्ष का अनुभव भरा हुआ है। खेती ही ऐसी वृत्ति है, जिसमें सतोगुणी भावनाओं को स्थायित्व मिल सकता है। परोपकार में तो इसका सबसे ऊँचा स्थान है ही, इसीलिये कृषि-कर्म सर्वश्रेष्ठ और माननीय कहा गया है। अन्न ही जीव-मात्र का जीवन है, और यही उसका आधार है, अतः यह प्राणिमात्र के लिये अत्यंत उपयोगी ही नहीं, सबसे आवश्य-कीय वस्तु है। इसका उत्पादन महान् कर्तव्य-कर्म के साथ पुण्य कर्म भी है। अन्य व्यवसायों की भाँति इसमें छल-कपट, धोखा-धड़ी का नाम-निशान भी नहीं। इसी के सहारे संसार के अन्य कर्म प्रचलित और व्यवहार योग्य हो सकते हैं। अन्न, फल, तरकारी, शाक, सब्जी, रुई, रेशम, तैल, इत्र आदि जो कुछ भी है, सब खेती से ही प्राप्त हो सकते हैं। इसीलिये खेती की बड़ी भारी महिमा कही गई है, और अन्य व्यवसायों पर इसका प्रभाव भी बहुत है।

वर्षा-ऋतु में कुछ दिनों तक भी पानी न बरसने से संसार में त्राहि-त्राहि मच जाती है, और वृक्ष तथा पौदे सूखने लगते हैं। उस समय दुर्भिक्ष की महान् विभीषिका मूर्तिमती होकर आँखों के सामने नृत्य करने लगती है। यदि यथार्थ में अकाल पड़ गया, तो लाखों मनुष्य कराल काल के ग्रास हो जाते और सारे व्यापार शिथिल हो जाते हैं।

कुछ विद्वानों की राय है कि पहले समय में कृषि-पद्धति का वर्तमान रूप न था। यों तो प्रत्येक देश में खेती की अलग-अलग प्रणालियाँ हैं, फिर भी उनका लक्ष्य एक ही है। पहले मनुष्य-समाज छोटा था, थोड़ा अन्न पैदा करने पर ही सारे देश का काम चल जाता था, इसलिये भूमि की विशेष चिंता नहीं रहती थी। थोड़ा-सा जंगल साफ़ कर लिया, और जमीन कुरेदकर दाने गाड़ दिए, बस, अन्न पैदा हो जाता था। परंतु अब आबादी बहुत बढ़ गई है, और अनेक देशों में तो वहाँ की भूमि से पूरी आबादी के लिये अन्न उत्पन्न हो ही नहीं सकता। ऐसी दशा में वहाँ की सरकार का कर्तव्य हो जाता है कि बाहर दूसरे देशों से अन्न मँगवाकर सारी प्रजा का पालन करे।

परंतु प्रत्येक देश अब यह सोचने लगा है कि अपने देश के लिये अपने मुल्क में ही अन्न पैदा करना चाहिए, नहीं तो युद्ध आदि की दशा में अन्नाभाव से कष्ट की मात्रा बहुत बढ़

जाती है। इसीलिये वैज्ञानिक ढंग से खेती करके उत्तम अन्न बहुत बड़ी मात्रा में शीघ्र उत्पन्न करने की क्रियाएँ सोच निकाली गई हैं।

इसीलिये कृषि एक शास्त्र बन गया है, और इस विद्या का विस्तार महान् विज्ञान के सहारे चलाया जा रहा है। बड़े-बड़े अनुभवी कृषि-विद्या-विशारद दत्तचित्त हो अनेक प्रकार के आविष्कारों द्वारा खेती की उन्नति में संलग्न हो रहे हैं। अमेरिका और डेनमार्क ने इस विषय में बहुत उन्नति की है। चीन, जापान और कोरिया-वासियों ने यद्यपि पुरानी प्रणाली का ही आधार ले रक्खा है, परंतु उन्होंने अपने प्राचीन अनुभव के सहारे से ही बोने, बीज-संरक्षण, सिंचाई, खाद, जुताई, भूमि, रोगों के बचाव आदि में आशातीत सफलता प्राप्त करके अन्न की उपज पहले से दुगुनी-तिगुनी कर ली है।

भारतवर्ष बहुत समय से कृषि-प्रधान देश रहा है। यहाँ अन्न की उपज देश की आवश्यकता से बहुत अधिक होती रही है। इसी से यह दूसरे देशों को भी अन्न देकर उनका भरण-पोषण करता रहा है। परंतु इधर अन्य देशों ने कृषि-शास्त्र में जो महान् उन्नति की है, उसका दशांश भी यह देश नहीं कर सका। उन देशों ने विज्ञान का सहारा लेकर भारत की उपज की अपेक्षा दूनी, तिगुनी, चौगुनी और कहीं-कहीं तो छगुनी

उत्पादन-शक्ति बढ़ा ली है। फलतः जो लाखों मन अन्न भारत से विदेशों में जाता था, वह अब लौटकर विदेशों से भारत में आने लगा है। इस पर देश की सरकार और कृषक-नेताओं को ध्यान देना चाहिए। यह एक विशेष विचारणीय बात एवं दुःखद विषय है। इसका निराकरण शीघ्र सोचने की आवश्यकता है।

इसका मुख्य कारण यही है कि भारतवर्ष की कृषि-पद्धति में नाम-मात्र का भी सुधार नहीं हुआ है। प्रत्येक प्रांत में जो कृषि-विद्यालय और आदर्श अन्वेषण फ़ार्म सरकार ने खोल रक्खे हैं, उनका किसानों से कोई सीधा संबंध नहीं है, और न इन विद्यालयों के अध्यापकगण किसानों से मिल-जुलकर उनकी खेती की दशा जानने और उसमें सुधार कराने का ही प्रयत्न करते हैं। अतः ग्राम-सुधार-केंद्र आदि में जो धन व्यय किया जा रहा है, वह बेकार ही जाता है।

अनेक प्रकार के हल, आदि यंत्र और मशीनें जो केंद्रों में रक्खी हैं, उनसे किसानों का बिलकुल परिचय नहीं, और न वे उनका उपयोग करना जानते हैं। हल भारी होने से वे किसानों को कोई लाभ पहुँचा भी नहीं सकते; क्योंकि इन वर्षों में बैलों की बड़ी कमी हो गई है, और किसानों के पास छोटे-छोटे बैल होते हैं, अतः इन औज़ारों को अनुपयोगी जानकर किसान इन औज़ारों और सुधारों से उपेक्षा

करने लगते हैं। खादों और यंत्रों के नाम अँगरेजी में होने से वे और भी दब जाते हैं। अतः ग्रामीण कृषकों की वर्तमान अवस्था का अनुभव कर उनके उपयोगी साधनों के सहारे उन्हें आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया जायगा।

पौदों का जीवन

संसार की सभी वस्तुएँ विचित्र हैं। जितना ही अधिक किसी विषय में मनुष्य जानता है, उतना ही विस्मित होता है। आयु-भर सीखकर भी वह किसी विषय में पूर्णज्ञ नहीं बन सकता। संसार यों तो साधारण-सा जान पड़ता है, परंतु विचारने से प्रत्येक वस्तु आश्चर्य-जनक बन जाती है। सूर्य, चंद्र, वृक्ष आदि सबमें यही बात है। अन्वेषण से ज्ञान की लालसा और भी बढ़ जाती है। तब यह ज्ञान अनंत बन जाता है।

पौदों को हम नित्य देखते हैं, परंतु उनका उगना, बढ़ना, फलना, पकना और मुरझाना सभी आश्चर्य-जनक है। जितना पता है, वह बहुत अधूरा है। विज्ञान-वेत्ता भी इसी अपूर्णता का अनुभव करते हैं। भगवान् की भाँति उनकी सृष्टि भी अनंत है। उसके किसी अँग के ज्ञान से पारंगत होना भी मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर है। गेहूँ का एक दाना लो। उसे कार्तिक में मिट्टी ठीक करके बो दो। थोड़े दिन में उग आएगा। फिर बढ़ने लगेगा। बाली निकल आएगी। इसमें वैसे ही दाने होंगे, जैसे बोए थे। फिर दाने झड़ जायँगे, पौदा सूख जायगा, और सड़कर मिट्टी में मिल जायगा। तब यह प्रश्न

होगा कि गेहूँ का पौदा कैसे बन गया, कैसे दाने आए, फिर कैसे स्वयं नष्ट हो गया ?

अब तक विद्वानों का ख़याल था कि वनस्पति में जीव नहीं है, परंतु जे० सी० बोस ने विज्ञान से यह प्रमाणित कर दिया कि पौदों में वे सब चेष्टाएँ होती हैं, जो मनुष्य और पशुओं में पाई जाती हैं।

पौदे में जीवन का यही प्रमाण है कि वे वायु, पानी तथा मिट्टी से अनेक पदार्थों को लेकर अपने शरीर के अनेक भागों को बनाते हैं। नए पत्ते, फूल, फल तैयार करते हैं। जीवन-काल में पौदा मिट्टी से भोजन लेता है, मरने पर वही मिट्टी पौदे को खाने लगती है। वृक्ष के कटने और सूखने पर उसकी सामर्थ्य समाप्त हो जाती है। परंतु हरी टहनी ज़मीन में गाड़ देने पर उग आती है। गुलाब आदि में यही विशेषता है।

पौदे के जीवित रहने के निम्न-लिखित चिह्न हैं—

(१) जीवित पौदा बाहर से पदार्थ ग्रहण कर अपने अंग बनाता और पालन करता है। उसकी क्रिया निरंतर जारी रहती है।

(२) प्रत्येक जीवित पौदा बाहर से जितनी वस्तु लेता है, उससे कम मात्रा में निकालता है। इस प्रकार वह अपने अंग बढ़ाता है। खाँड़ का दाना शीरे में रूप बदलता है, बढ़ता

नहीं। प्रत्येक जीवधारी अपने-जैसे अनेक जीव पैदा कर देता है। पर रासायनिक वस्तु में ऐसा नहीं होता।

(३) जीवधारी वस्तुएँ चलती-फिरती हैं। शरीर में संचालन होता है। पत्थर आदि में यह गुण नहीं है। पर पौदे में गति है, वह बढ़ता है, एक दशा से दूसरी दशा में आता है। जड़ें नीचे-ऊपर तना फैलाती हैं। जे० सी० बोस ने यह भी सिद्ध किया है कि पौदे मनुष्य की भाँति खाते, पीते, सोते, जागते, क्रोध करते हैं, कष्टों का मुक़ाबिला करते हैं, सुनते हैं, देखते हैं। त्वचा स्पर्श का अनुभव करती है। आर्य-सिद्धांत पूर्व से ही वृक्षों में जीवन मानता था। इनमें मनुष्य के समान आत्मा होती है।

इस प्रकार संसार के दो भाग हो जाते हैं—(१) सेंद्रिय और (२) निरिंद्रिय। मनुष्य या पौदे से जीव निकल जाने पर वह निर्जीव हो जाता है।

जीवधारी द्वारा बनाए गए पदार्थ जैसे गोबर, मूत्र, हड्डी, मांस, खाल, पत्ते आदि ऐंद्रिक हैं, और निर्जीव पदार्थ जैसे मिट्टी, पत्थर आदि निरिंद्रिय। बिना मिट्टी के पौदे को ख़ुराक नहीं मिल सकती, अतः यह आवश्यक अंग है।

जीवन क्या है, कैसे पैदा होता है, कहाँ रहता है, जीवन कब समाप्त होता है, इत्यादि बातों को विचारशील लोगों ने जानने का प्रयत्न किया है। अध्यात्मशील लोग जीव या आत्मा को विशेष वस्तु मानते हैं, जो शरीर पर अधिकार

रखता है। उसी की उपस्थिति में शरीर बनते हैं, पर ज्ञान नहीं है। भोजन से रस कैसे बनता है। जीवन की समाप्ति पर वे क्रियाएँ बंद हो जाती हैं। वैज्ञानिक जीव को तो नहीं मानते, पर एक वस्तु प्रोटो- प्लाज्म का नाम देते हैं। ये दोनो एक ही वस्तु हैं।

चट्टानों के मुख्य भेद ये हैं, जिनके विघटन से भूमि भी कई प्रकार की बन जाती है—

(१) बज़ाल्टिक चट्टान काले रंग की होती है। इससे काले रंग की मिट्टी काली भूमि बन जाती है।

(२) ग्रेनाइट चट्टान भूरे तथा सफ़ेद रंग की होती है। इससे भूरे, पीले तथा सफ़ेद रंग की मिट्टी बनती है। इन चट्टानों में दाने दिखलाई देते हैं।

(३) कुछ चट्टानें ज्वालामुखी पर्वत के लावे के ठंडे होने से बनी हैं।

(४) कुछ चट्टानें पानी के भीतर क्रमशः सख्त चिकनी मिट्टी की तह पर तह जमने से बनती हैं, और चूना, मुरम्मा, क्वार्टज (स्फटिक) आदि जुड़कर बहुत सख्त चट्टानें बन जाती हैं। उनकी पहचान यह है कि उन पर तहों के ऊपर तह जमने के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं।

ग्रेनाइट चट्टान तीन पदार्थों क्वार्टज, फ़ेल्सपार और माइका के छोटे टुकड़ों से बनी है। क्वार्टज पदार्थ में केवल शुद्ध बालू पाई जाती है। फ़ेल्सपार और अबरक में कई खनिज पदार्थ मिले रहते हैं, जिनके नाम ये हैं—

(१) बालू, (२) अलूमिना, (३) पोटाश, (४) सोडा, (५) चूना, (६) मेग्नीशिया, (७) लौह ओषिद, (८) स्फुरिकाम्ल और (९) गंधक।

इस प्रकार भूमि-निर्माण में अनेक वैज्ञानिक और प्राकृतिक

क्रियाएँ स्वाभाविक रीति से काम करते हुए अन्न उपजाने योग्य धरती बना देती हैं, और भिन्न-भिन्न प्रकार की चट्टानों से भूमि बनने के कारण ज़मीन भी कई क़िस्म की बन जाती है।

भूमि की क़िस्में

कृषि-वैज्ञानिकों ने भूमि के कणों के आधार पर इसे निम्न-लिखित भागों में विभाजित किया है, जिनके नाम प्रांतों में भिन्न-भिन्न पड़े हुए हैं—

(१) मटियार, (२) भूड़, (३) दुमट, (४) मटियार दुमट, (५) रेतीली दुमट और (६) कँकरीली।

इसी मटियार को कहीं काली ज़मीन भी नाम दिया जाता है। इसमें खाद्य-पदार्थ सबसे अधिक मात्रा में होता है। यह देर में गरम और देर में ठंडी होती है। पानी कम सोखती है, और धीरे-धीरे सोखती है। पानी धारण करने की शक्ति अधिक होती है, और नमी दीर्घ काल तक रखती है। कण बहुत छोटे-छोटे होते हैं। भुरभुरापन कम होता है। सूखने पर तड़क जाती है। वायु का प्रवेश कम होता है। पौधा अपनी जड़ें सरलता से नहीं फैला सकता। यह भूमि तड़कने पर और भी गीली हो जाती और पौधों की जड़ों को अधिक हानि पहुँचाती है। इसमें भारी हल चल सकता है। मटियारी भूमि में ८०-९०% चिकनी मिट्टी और १०-१२% रेत होता है। यह भूमि बहुत

उपजाऊ होती है। इसमें पानी की आर्द्रता देर तक रहती है। काली मिट्टी में रबी की फ़सल होती है। इसके तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट।

भूड़—इसमें खाद्य-पदार्थ कम होता है। यह शीघ्र गरम और शीघ्र ठंडी हो जाती है। पानी शीघ्र और अधिक सोखती है। पानी धारण करने की शक्ति कम होती है, इसलिये पानी देने के थोड़े समय बाद ही सूखापन आ जाता है। इस भूमि में हलका हल चलता है। गहरी जुताई की इसमें आवश्यकता नहीं है। भूड़ को रेतीली और बलवार भी कहते हैं। इसमें ६० से १०० प्रतिशत तक रेत रहता है, और १०% चिकनी मिट्टी होती है।

दुमट—यह भूमि सर्वोत्तम होती है। इसमें मटियार, भूड़ और कँकरीली भूमि के दोष नहीं होते। इसमें खाद्य-पदार्थ का अंश यथायोग्य होता है। यह सम रूप में ठंडी और गर्म होती है। जल सोखने और जल धारण करने की शक्ति भी औसत दर्जे की है। इसमें हवा और पानी का संचार अच्छी तरह होता है। सूखने पर मटियार की तरह तड़कती नहीं, और भूड़ की भाँति नमी भी नहीं रहती। इसमें प्रत्येक प्रकार की फ़सल बोई जा सकती है। यह गुण केवल इसी भूमि में है। इसमें ३५ से ६५% तक चिकनी मिट्टी और रेत रहता है।

मटियारी दुमट—यह मटियार और दुमट के बीच की

क़िस्म है, और उसी के अनुसार इसका गुण समझना चाहिए। इसमें ६० से ७०% तक चिकनी मिट्टी और ३० से ४०% तक रेत होता है।

रेतीली दुमट—यह भूड़ और दुमट के बीच की क़िस्म है। इसके गुण उसी के अनुसार समझने चाहिए। यह भूड़ से अच्छी होती है। इसमें ½ भाग रेत और ½ भाग चिकनी मिट्टी होती है।

कँकरीली—यह निकृष्ट भूमि है। इसमें खाद्य-पदार्थ कम होता है। पानी ग्रहण करने की शक्ति कम होती है, और जड़ें गहरी नहीं जातीं। इसमें चूना बनानेवाले कंकड़ की मात्रा १५% से अधिक होती है। जब इसमें २५% से अधिक कंकड़ होता है, तब यह खेती के अयोग्य होती है।

मिट्टी की जाँच का तरीक़ा—भूमि में कितना कंकड़ है, कितना रेत और कितनी चिकनी मिट्टी है, इसके जानने के लिये खेत की मिट्टी लेकर परिमित नाप की चलनियों से छानना चाहिए। जिस खेत की मिट्टी लेनी हो, वहाँ के तीन-चार स्थानों की मिट्टी लेकर मिला देनी चाहिए, और उसमें से थोड़ी जाँच के लिये लेना चाहिए।

तीन मिलीमीटर की गोल छेदवाली चलनी से छानने पर कंकड़-पत्थर चलनी में रह जायगा। फिर उसे १ मिलीमीटर-वाली चलनी से छानने पर बजरी और कँकरीली मिट्टी (Gravel) रह जायगी। अब इस छने हुए को १ से २

मिलीमीटर की चलनी से छानिए, तो चलनी में मोटा रेत रह जायगा। छना हुआ बारीक रेत होगा। '२ से '०४ मिली-मीटर का बारीक रेत होता है। मोटी चिकनी मिट्टी के कण '०४ से '०२ मिलीमीटर के तथा '००२ से छोटे कण चिकनी मिट्टी के होते हैं। इनको जानने के लिये चलनी काम नहीं देती। उसे पानी में घोलकर और परिमित समय तक ठहराकर अलग किया जा सकता है।

रंग देखकर ज़मीन की पहचान—

(१) यदि खेत की मिट्टी काले रंग की हो, तो किसान को निश्चय समझ लेना चाहिए कि उसमें नाइट्रोजन, शोरा और कार्बन मिला हुआ है। इस तरह की भूमि को मटियार कहते हैं। ऐसे खेतों में हर तरह की फ़सल हो सकती है।

(२) यदि खेत की मिट्टी पीले रंग की हो, तो समझना चाहिए कि खेत में फ़ासफ़ोरस और चूना मिला हुआ है। इस क़िस्म के खेत को दुमट समझना चाहिए। ऐसी ज़मीन में फूल, फल और ग़ल्ले की सब फ़सलें ख़ूब पैदा होती हैं।

(३) यदि खेत की मिट्टी सफ़ेदी मायल पीले रंग की हो, तो कृषक को जान लेना चाहिए कि इसमें बालू और उद्भिज्ज अंश अधिक है। ऐसे खेत की मिट्टी बलुई दूमट कहलाती है। ऐसे खेतों में जौ, जई, सरसों, राई, उर्द, कुल्थी आदि फ़सलें अच्छी होती हैं।

(४) यदि मिट्टी का रंग लाल हो, तो किसान को समझना

चाहिए कि मिट्टी में लोहे का अंश अधिक है। लाल मिट्टी में पुटाश और अमोनिया भी मिले रहते हैं। ऐसे खेत में तंबाकू और कपास अच्छी होती है।

भूमि का विश्लेषण

जिस भूमि में पत्थर की मात्रा अधिक हो, उसे पथरीली भूमि कहते हैं। जिसमें रेत अधिक होता है, उसे रिहाई और जिसमें शोरा अधिक मात्रा में मिले, उसे शोर कहते हैं। इसकी मिट्टी खारी होती है। जिस भूमि पर घास तो उग आती हो, परंतु खेती न होती हो, उसे बंजर कहते हैं। वह भूमि खेती के योग्य तथा अत्यंत उपजाऊ होती है, जो किसी कारण से कुछ साल तक बिना जुते पड़ी रहती है, उसे परती कहते हैं। यह कुछ काल में बंजर के समान हो जाती है।

गाँव के समीप खेती की भूमि को गोहान, गोयंड और बाड़ा कहते हैं। यह उपजाऊ होती है, क्योंकि गाँव के समीप होने से इसमें खाद अधिक पड़ती रहती है।

जो खेत गाँव से दूर होते हैं, उन्हें उपरहार या पल्ल कहते हैं। यह भूमि खाद, पाँस न पड़ने के कारण कम उपजाऊ होती है। जो भूमि न अधिक दूर हो, और न गाँव के क़रीब, उसे मँझार कहते हैं।

गोहान का मूल्य और लगान सबसे अधिक, मँझार का सम और उपरहार का सबसे कम होता है।

जिस भूमि में एक फ़सल होती है, उसे 'एक फ़सला' और जिसमें दो फ़सलें होती हैं, उसे 'दो फ़सला' कहते हैं।

जहाँ केवल रबी की एक ही फ़सल होती है, उसे अपाढ़ी कहते हैं।

ज़मीन की तैयारी

जंगलों को साफ़ करके उन्हें फ़सल के योग्य बनाने के पूर्व कई कार्य करने पड़ते हैं। शुरू में जंगलों के झाड़ और कँटीली झाड़ियों को काटकर उनके ठूँठ ज़मीन खोदकर निकालने पड़ते हैं। तब भूमि को बराबर करने की आवश्यकता होती है, और ऊँचे-ऊँचे टीलों को खोदकर गड्ढों में भरकर समतल करना पड़ता है।

जब भूमि चौरस हो जाय, तब फ़सल बोने के लिये उसकी जुताई करनी पड़ती है। इसके अलावा पानी का निकास और समय पर सिंचाई तथा खाद देना आदि अन्य उपायों का भी सहारा लेना पड़ता है।

जिस खेत में पानी भरा रहता है, उसमें फ़सल अच्छी नहीं होती, इसके मुख्य कारण नीचे दिए जाते हैं—

(१) पानी भरा रहने से ज़मीन हमेशा ठंडी रहती है। इस ज़मीन पर जितनी धूप पड़ती है, वह पानी को भाप बनाकर उड़ाने में ख़र्च हो जाती है। फल यह होता है कि

ज़मीन अच्छी तरह तैयार नहीं हो पाती, और उसमें बोई हुई फ़सल की जड़ों को काफ़ी गर्मी नहीं पहुँचती।

(२) अधिक पानी भरा रहने से ज़मीन के पोषक द्रव्य अधिक द्रव हो जाते हैं। पौधे की जड़ें उतना ही पानी सोख सकती हैं, जितना उनकी ग्रहण-शक्ति सोखने देती है। सोखे हुए पानी का परिमाण अधिक और पौष्टिक अंश का परिमाण कम रहता है, इसलिये पौदे को काफ़ी भोजन न मिलने से वह निर्बल हो जाता और धीरे-धीरे सूख जाता है।

(३) भूमि में पानी भरा रहने के कारण हवा मिट्टी में प्रवेश नहीं कर सकती। ज़मीन के खाद्य पदार्थों को जड़ों द्वारा ग्रहण करने योग्य बनाने के लिये हवा की बहुत ज़रूरत होती है। सूखी मिट्टी में हवा का प्रवेश ठीक रीति से हो सकता है। यदि भूमि जुती हो, तो हवा पहुँचने में और भी सुगमता होती है।

(४) पानी भरा रहने से पौदे की जड़ें सड़ जाती हैं।

(५) खाद के साथ बहुत-सा कचरा-कूड़ा बिना सड़ा खेत में इकट्ठा हो जाता है। उष्णता के बिना यह सड़ नहीं सकता, और पानी के कारण उष्णता का अभाव ही रहता है।

इन सब दोषों को दूर करने के लिये यह बहुत ज़रूरी है कि पानी के निकास की व्यवस्था की जाय, ज़मीन में नालियाँ बनाकर।

पानी का निकास किया जा सकता है। भारतवर्ष में अधिकतर खुली नालियाँ ही बनती हैं। ये नालियाँ ज्यादा चौड़ी और कम गहरी होती हैं। कहीं-कहीं तीन फ़ीट की गहराई पर ईंट, पत्थर या मिट्टी के नल रखकर पानी के लिये मार्ग बनाया जाता है। इससे निम्न-लिखित लाभ हैं—

(१) बरसात का पानी मिट्टी से होकर नीचे उतरता है, और वातावरण से होकर जमीन पर गिरता है। इस प्रवाह में वह वातावरण से कुछ पोषक द्रव्य ग्रहण कर लेता है। ये द्रव्य पानी के साथ जमीन में प्रवेश कर वृक्षों की जड़ों को प्राप्त हो जाते हैं, इससे पौदे की पुष्टि होती है।

(२) यदि जमीन के पृष्ठ भाग पर वनस्पति को हानि पहुँचानेवाले क्षार होंगे, तो वे पानी से घुलकर नीचे उतर जायँगे, और तब खेत के उपयोग से बाहर चले जायँगे।

(३) पानी के साथ जमीन को हवा और उष्णता भी मिलती रहती है।

जुताई

यह कहावत—कि "बीज पड़े फल अच्छा देत, जितना गहरा जोते खेत।"—यथार्थ में सत्य और गहरे अनुभव पर निर्धारित की गई है। खेत की गहरी जुताई फ़सल को अवश्य उत्तम कर देती है। यद्यपि पानी, बीज, खाद और भूमि का उत्तम होना ही फ़सल को उत्तम बनाता है, परंतु गहरी जुताई इन चारों बातों के लिये गुणकारी और सहायक है। गहरी जुताई खेत की नमी को स्थायित्व देती है, अतः पानी के लिये सहायक है। ऊपरी भूमि की खाद को पौदे शीघ्र हज़म कर जाते हैं, परंतु कुछ गहराई तक के आवश्यकीय अंश बहुत दिनों तक खाद का काम देते रहते हैं। बीज के उपजने में तो गहरी जुताई अत्यंत सहायक होती है। उथली जुताई से मूसला जड़वाले पौदे कड़ी भूमि में गहरे नहीं जाते, अतः छोटे और निर्बल रह जाते हैं।

यदि भूमि उत्तम क़िस्म की भी हो, तब भी गहरी जुताई ही उसके यथार्थ स्वरूप को स्थापित रख सकती है। नहीं तो दो-तीन वर्ष में ही भूमि के ऊपरी खाद्य-परमाणु पौदों के काम आ जाने पर पौदे की जीवनी शक्ति क्षीण पड़ जाती है। अतः उसमें अधिक खाद देने की आवश्यकता रहती है।

गहरी जुताई से खाद की बहुत कुछ कमी पूरी हो जाती और खेत उर्वर तथा शक्तिशाली बना रहता है। इस प्रकार गहरी जुताई भूमि के सुधारने, पानी, बीज और खाद चारों के कार्य में सहायक रहती है, और कमी की पूर्ति भी करती है, इसलिये यह कहावत अपनी सत्यता स्वयं ही चरितार्थ करती है।

गहरी जुताई के लिये कानपुर का मिट्टी पलटनेवाला हल सबसे अच्छा माना जाता है। इसकी क़ीमत भी अधिक नहीं, ५ या ७ रुपया मूल्य है, जिसे प्रत्येक किसान सरलता से व्यय कर सकता है।

इस हल की ५-७ बार की जुताई देशी हल की १५-२० बार की जुताई के बराबर होती है।

खेत कब जोतना चाहिए, इसके विषय में भी अनुभव से जाना गया है कि गर्मी में खेत जोतकर छोड़ देना बहुत अच्छा है। इससे भूमि आवश्यक कीटाणुओं को सुरक्षित कर लेती है, और उसकी शोषण तथा रक्षण-शक्ति बढ़ जाती है।

आषाढ़ में पानी पड़ने पर तो खेत अवश्य जोत डालना चाहिए। कहा भी है—

"जो बाहै असाढ़ इक बार, ता घर उपजै अन्न अपार।"

यों तो प्रत्येक फ़सल के लिये अलग-अलग जुताई करनी पड़ती है, और उनका समय भी अलग-अलग होता है। किसी

अन्न के लिये आठ-दस बार खेत जोतना पड़ता है, तो किसी के लिये दो-एक बार जोतना ही पर्याप्त होता है। गेहूँ आदि के लिये खेत कई बार जोतना पड़ता है, परंतु ज्वार, बाजरा के लिये एक ही बार जोतना पर्याप्त होता है। यह विवरण प्रत्येक फ़सल के साथ दिया गया है।

खाद

खेती के लिये खाद सबसे महत्त्व-पूर्ण वस्तु है। खेती की उपज से पौदे भूमि का जो-जो अंश खींच लेते हैं, उस कमी को खाद ही पूरी करती है, नहीं तो थोड़े दिनों में भूमि की उर्वरा-शक्ति बिलकुल क्षीण हो जाती है। और, उर्वरा-शक्ति नष्ट होकर ज़मीन ऊसर हो जाती है। जिस प्रकार दूध, घी, मक्खन, दही आदि शक्ति-वर्धक पदार्थ मनुष्य को पुष्ट और शक्तिशाली बनाते हैं, उसी प्रकार खाद खेती के लिये उपयोगी है। यह भूमि की स्थिति को क़ायम रखती है, उसकी उन्नति करती है, और जल धारण करने की शक्ति बढ़ाने तथा उपयोगी कीटाणुओं के जीवन के लिये भी अत्यंत आवश्यक वस्तु है। यदि यह भोजन खाद के रूप में भूमि को न लौटा दिया जाय, तो पौदे की बाढ़ रुक जाती है, पैदावार निरंतर कम होती जाती और अंत में भूमि बंजर हो जाती है।

खाद दो प्रकार की होती है—(१) साधारण पाँस और (२) विशेष पाँस, साधारण पाँस में आम तौर पर पौदों के लिये उपयोगी निम्न-लिखित पाँसों की गणना की जाती है—

(१) गोबर की पाँस

(२) कूड़ा-करकट आदि की पाँस

(३) भेड़-बकरी की लेंड़ी की पाँस

(४) घोड़े की लीद की पाँस
(५) विष्ठा की पाँस
(६) पेशाब आदि की पाँस
(७) हरियाली की पाँस
(८) मछली की पाँस
(९) अंडी की खली की पाँस
(१०) महुए की खली की पाँस
(११) नीम की खली की पाँस
(१२) अलसी, सरसों, बिनौला, तिल आदि की खली की पाँस
(१३) हड्डी की पाँस

विशेष पाँसों के नाम निम्न-लिखित हैं—

(१) शोरा (नाइटर साल्ट पीटर), (२) अमोनियम गंधित, (३) पोटैशियम गंधित, (४) केनाइट, (५) आविस्फुरित खनिज, (६) कोलत्तर जिप्सम, (७) नाइट्रोलिम, (८) चूना और (९) हड्डी की खाद इनमें प्राय: ५०% खनिज पदार्थ रहते हैं, और ख़ास खादों की तरह प्रयोग में लाई जाती हैं।

खाद के मूल तत्त्व

खेत में जिस-जिस तत्त्व की कमी होती है, खनिज और ऐंद्रिक तत्त्वों द्वारा उनके पूरा होने से ही खेत को लाभ हो सकता है, और उपज अच्छी होती है।

ऐंद्रिक खाद अधिक उपयोगी होती है। खेत में ऐंद्रिक खाद अधिक हो, तो कोई हर्ज नहीं, कमी न होनी चाहिए।

गर्मी के दिनों में जुताई करने से ऐंद्रिक पदार्थ कम हो जाते हैं। दूसरी ओर जुताई करने से वर्षा का लाभ मिलता तथा नाइट्रोजन पैदा करनेवाले कीड़ों की विशेषता हो जाने से बड़ा लाभ पहुँचता है। गर्मी में ऐंद्रिक भाग कम होता रहता है। खेत में यदि नाइट्रोजन की कमी पूरी कर दी जाय, तो फ़सल अच्छी हो सकती है।

नीचे एक सूची दी जाती है, जिसमें १००० पौंड पैदावार के लिये कितनी नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है, दिया गया है—

फ़सल	नाइट्रोजन
फलीदार फ़सलें	३० से ६० पौंड तक
तैलवाली बिना फलीदार जिंसें	२५ से ४० ,, ,,
फलीदार घासें	२० से ३० ,, ,,
तंबाकू के पत्ते	२० से २५ ,, ,,
अन्न	१५ से २५ ,, ,,
बिना फलीदार घासें	१० से १५ ,, ,,
मकी, कपास या तंबाकू की लकड़ी	८ से १० ,, ,,
ताजी, हरी, फलीदार जिंसें	५ से १० ,, ,,
भूसा	५ से ६ ,, ,,
हरी सब्जी	२ से ५ ,, ,,
जड़ें	२ से ४ ,, ,,
फल	१/२ से २ ,, ,,

१०० पौंड पैदावार में खनिज अंश—

पौधों के नाम	नाइट्रोजन	पुटाश	सोडा	चूना	मैग्नेशिया	गंधक	क्लोरीन	फ़ासफ़ोरस
मकी	१३'९	३'४	'२	'१	१'१	१'५	'६	२'६
जई	१७'४	४'२	१'७	१'	१'२	२'	'७	५'
चावल	१०'४	'४	'३	'१	'३	१'	'४	'९
गेहूँ	१६'५	५'२	'३	'५	१ ३	२'	'८	३'७
सेब	'४	१'२	'१	'	'१	'१	'१	'१
केला	१'८	३'५	'७	'१	'	'१	'१	१
गोभी	१'९	१'७	'	'४	'२	'६	'२	'२
प्याज़	२'६	१'८	'१	'३	'२	'८	'२	'४
आलू	३'२	२'७	'३	'१	'६	'३	'१	'५
रिज का चारा	३३'१	७'७	४'५	१०'३	३'७	२'८	१'५	२'२
लोबिया	३५'६	७'८	६'५	१८'१	९'८	३'२	१'५	२'५
गेहूँ का भसा	२'८	८'	२'२	२'१	'६	१'५	२'	'४
बिनौला पिसा	५७'४	१६'६	२'६	२'७	५ ५	४'९	'४	१३'५
अलसी	५६'८	११'	२'५	३'६	४'९	४'१	'९	७१

नोट—इन तालिकाओं में अंतर है। भूमि के कारण अलग-अलग तत्त्व पाने से यह अंतर हो गया है, अतः स्थान-भेद मुख्य कारण है।

खाद के भेद

वर्षा में भी नाइट्रोजन खेती को मिलती है, पर कम तादाद में। अनेक पौदों की जड़ों पर जंतु रहकर वायु से नाइट्रोजन इकट्ठा कर देते हैं। जैसे—मटर, रिजका, चना, मेथी, जुआर, अरहर, लोबिया, मूँगफली, सनी, उड़द, मूँग, मोठ आदि।

इसीलिये इन फ़सलों के बाद की फ़सल बहुत अच्छी होती है। फलीदार पौदों पर ही कीड़ों की यह क्रिया होती है, अन्यत्र नहीं।

खेतों को वैसे ही बाहन छोड़ देने पर नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है। एक एकड़ में एक वर्ष में २५ पौंड से ४०० पौंड तक नाइट्रोजन बढ़ती पाई गई है। यह परिमाण ठंडे देशों का है, गर्म देशों में यह तादाद और भी बढ़ जाती है। खेत को दो-एक वर्ष के लिये ख़ाली छोड़ देने पर उसकी उपजाऊ शक्ति बढ़ जाती है।

यदि खेत में वायु-संचार ठीक हो, और चूना तथा कारबो-हाइड्रेट काफ़ी हो, तो जंतु स्वयं नाइट्रोजन इकट्ठा करते रहते हैं। पर तेज़ाबवाली खट्टी धरती में ये जंतु काम नहीं करते। खेत की नाइट्रोजन नाइट्रेट के रूप में हो जाने पर ही वह खेती के काम की होती है। Rubiaiacex जाति के पेड़ स्वयं नाइट्रोजन पैदा करने का काम करते रहते हैं। खेत की फ़सल को जोत देने से भी नाइट्रोजन बनता है। सबसे अच्छा तरीक़ा फलीदार फ़सल को जोतने

का है। जमीन में फ़ासफ़ोरस होने से ५ प्रकार के लाभ होते हैं—

(१) जड़ें अधिक फैलती हैं, (२) पौदे शीघ्र बढ़ते हैं, (३) घासें कम पैदा होती हैं, (४) अन्न शीघ्र पकता है और (५) चारे और अन्न को स्वादिष्ट बनाता है। फ़ासफ़ोरस हड्डियों में सबसे अधिक होता है।

गोबर की २७ मन खाद में १३ पौंड पुटाश मिला रहता है। पुटाश की सबसे अधिक मात्रा राख में होती है। पुटाश भी खेत में घास को फैलने और पनपने नहीं देता।

नाइट्रोजन की कमी की पहचान—

अधिक नाइट्रोजन होने से मिट्टी काली होती है। पुटाश और नमक अधिक होने पर धरती सफ़ेद हो जाती है। यह कमी नीचे लिखी बातों से जानी जाती है—

(१) मिट्टी रेतीली हो, (२) रंग भूसला हो, (३) तेजाब अधिक हो, (४) फ़ासफ़ोरस कम हो, (५) नमी अधिक हो, दलदल और डहर हो, (६) धरती बहुत सूखी और (७) खेत में पौदों के टुकड़े बिना गले तथा अन्य ऐंद्रिक खाद मौजूद होने पर नाइट्रोजन की कमी का पता लग जाता है।

फ़ासफ़ोरस की कमी की पहचान—

(१) धरती भारी हो, चिकनी मिट्टी या रेत अधिक हो। (२) मिट्टी का रंग भूसला हो, (३) मिट्टी तेजाबी हो, (४) मिट्टी में नाइट्रोजन कम हो और (५) पौदों की भोजन योग्य

अवस्था में नाइट्रोजन बहुत अधिक पाया जाय, तो समझना चाहिए कि ज़मीन में फ़ासफ़ोरस की कमी है।

पुटाश की कमी का पता इस प्रकार चलता है—

(१) मिट्टी रेतीली हो, (२) मिट्टी में मांद की मात्रा अधिक हो, (३) रंग भूसला हो, (४) तेज़ाब अधिक हो, (५) चाक मिट्टी अधिक हो और (६) चूना, पत्थर और कंकरीली भूमि हो, तो पुटाश की कमी समझिए—

अन्य तत्त्वों की कमी की पहचान—

(१) मिट्टी नमकीन हो, तो लोहा और मैग्नेशिया की कमी होती है, (२) रिहाली मिट्टी हो, तो गंधक की कमी समझनी चाहिए, (३) मेग्नेशिया अधिक होगा, तो लोहे की कमी होगी, (४) मिट्टी में खट्टापन (तेज़ाब) हो, तो चूने की कमी माननी चाहिए।

नाइट्रोजन की कमी का फ़सल पर निम्न-लिखित प्रभाव पड़ता है—

(१) पौदे धीरे-धीरे उगते हैं, और उनके पत्ते पीले होते हैं।

(२) पत्ते समय से पहले झड़ जाते हैं।

(३) फलदार पे. छोटे रह जाते और फल छोटे लगते हैं।

(४) पौदे झुलसे-से दिखलाई देते हैं, और पत्ते बीच डंठल से मुरझाने लगते हैं।

(५) पौदों में समय से पूर्व बीज आ जाय।

फ़ासफ़ोरस की कमी का पौदों पर निम्न-लिखित प्रभाव पड़ता है—

(१) पौदे छोटे रह जाते और पत्ते पीले हो जाते हैं।

(२) फ़सल पकने और पैदा होने में देर लगती है।

(३) फ़सल बढ़ने पर भी दाना छोटा रह जाता है।

पुटाश की कमी का फ़सल पर प्रभाव—

(१) पौदों में रोग लगना आरंभ हो जाता है।

(२) पुराने रिजके के पत्तों के किनारे पर चारों ओर आर-पार दिखाई देने लगता है।

(३) फलीदार पेड़ों के पत्तों पर चित्तियाँ पड़ जाती हैं।

(४) समय से पूर्व ही पत्ते किनारों की ओर से भीतर डंठल की ओर को मुरझाने लगते हैं।

अन्य तत्त्वों की कमी का पौदों पर प्रभाव—

(१) रिजका ठीक न बढ़े, तो चूना कम होता है।

(२) मैग्नेशिया की कमी से तंबाकू की फ़सल में Sand drown रोग हो जाता है।

(३) मेग्नीशिया की कमी होने पर यदि फ़सल पर चूने का पानी छिड़का जाय, तो वह पीली पड़ जाती है।

(४) लोहे की कमी होने से एक सिरे से पत्ते पीले पड़ने लगते हैं।

(५) गंधक या तेजाब के पदार्थ की कमी के कारण आलू फुसफुसे होते हैं।

हड्डियों की खाद

खेत की उपज जीवधारियों के काम आती है। यदि इस उपज का कोई अंश बाहर न जाय, और मरे पशु के शरीर के सारे अवयव खेत को मिल जायँ, तो देश की धरती की उपजाऊ शक्ति कभी कम न होगी, और न अन्य खाद की आवश्यकता होगी। देश से अन्न दूसरे देशों को भेजा जाता है, और हड्डियाँ भी विदेश को चली जाती हैं। भारत के किसान हड्डियों की क़दर नहीं जानते। इनके बिना हमारे देश की उर्वरा-शक्ति बहुत क्षीण हो गई है। १२५ वर्ष से ये हड्डियाँ बाहर जा रही हैं। इनमें चूना, फ़ासफ़ोरस और नाइट्रोजन रहता है। हड्डी की खाद खेत में डालने के एक वर्ष बाद अपना प्रभाव दिखलाती है। हड्डी को खूब चूरा करके खेत में डालना चाहिए, तभी वह मिट्टी में मिल और गल सकती है।

इसे खेत में डालने के ये तरीक़े हैं—

(१) मशीन से पीसकर हड्डी का चूरा खेत में डाला जाय। जहाँ बटन, कंघी आदि के कारखाने हों, वहाँ कतरन ही खेत में डाल देनी चाहिए—चरबी के कारण हड्डी देर में गलती है।

(२) १५-२० पौंड हड्डी स्टीम के दबाव (Steam pressure) में गरम करें। इससे चरबी निकल आएगी, (यह साबुन बनाने के काम आ सकती है) उस समय इसके गलने में भी सुगमता होगी।

(३) हड्डी जलाकर और चक्की में पीसकर खेत में चूरा डाला जाय। परंतु इसका प्रभाव देर से होता है।

(४) गंधक के तेज़ाब से गलाकर १½ मन तेज़ाब ३ मन पानी में धीरे-धीरे डाला जाय। फिर ३ मन हड्डियाँ उस घोल में डाल दी जायँ। इन हड्डियों को किसी लकड़ी आदि से चलाते रहना चाहिए। साबुत हड्डी ७ हफ़्ते में और चूरा करने पर ४ हफ़्ते में गल जायगी, और लेई-सी बन जायगी। इसमें ८ गुनी मिट्टी मिला देनी चाहिए। इस प्रकार ३० मन खाद बन जायगी, जिसका ख़र्च ३२|||=) होगा।

हड्डी ||) फ़ी मन

तेज़ाब =)|| प्रति सेर

मज़दूरी ७)

रेतीले खेतों में यह खाद बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। इसमें नाइट्रोजन होने से किसान इसे उपयोगी नहीं समझते।

गड्ढे में चिकनी मिट्टी की तह के ऊपर हड्डी रक्खी जाय। फिर पेशाब-मिला गंदी नाली का पानी डाला जाय। ३ बार ऐसा करने से हड्डी थोड़े दिनों में गल जाती है। यह हड्डी ६ महीने में तैयार हो जाती है। विलायत में इस पर काफ़ी ख़र्च किया जाता है। हड्डियों का बुरादा आलू की फ़सल के लिये बहुत उपयोगी है। और सींगों का बुरादा तो शीघ्र ही असर दिखलाता है। इसमें १२% नाइट्रोजन होता है।

मिट्टी की खाद

(१) तालाब या गढ़े की मिट्टी खेत में डालने से अच्छी खाद का काम देती है।

(२) लोना मिट्टी, जो कच्चे मकानों से पैदा होती है, खेत के लिये लाभदायक है।

शहर का कूड़ा-करकट—इसमें शाक-भाजी के पत्ते, घरों का कूड़ा और राख, बर्तनों के टुकड़े, सड़कों का गोबर, लीद, फटे-पुराने कपड़े और काग़ज़ आदि बहुत-सी वस्तुएँ रहती हैं।

मात्रा—बरसात से पहले एक एकड़ में ५०-६० गाड़ी डालना चाहिए।

शहर की मोरियों का पानी—मोरियों के पानी से जो तरकारियाँ और अन्न सींचे जाते हैं, उनकी पैदावार बहुत अच्छी होती है।

खलियों के सड़ाने की रीति

१०० भाग खली, २५ भाग मिट्टी, ५ भाग कोयला, और ६०-७० भाग जल का मिश्रण करके खाद के गढ़े में लगभग १ साल तक सड़ाना चाहिए। इसे ऊपर से ढक देना चाहिए, जिससे पानी उड़ न जाय। १०-१५ दिन बाद ऊपर से पानी छिड़कते रहना चाहिए। खलियों की खाद में नाइट्रोजन अधिक तथा स्फुर और पोटाश भी थोड़े परिमाण में होता है। पशुओं को खिलाई जानेवाली खलियों में खनिज पदार्थ का औसत यह है—

नाम खली	शतांश नत्रजन,	शतांश स्फुर	शतांश पोटाश
मूँगफली	१०६	२०३	२०२
सरसों	६०५	१०	१०४
कुसुम	५०८	१०३	१०२
अलसी	५०७	१०६	१०६
तिल	५०	१०१	१०
रामतिली	४०५	२०	१०९
नारियल	३०७	१०९	१०८
बिनौला	२०६	१०२	१०९
पशुओं को न खिलाई जानेवाली खलियाँ—			
अंडी	५०	१०८	१०६
नीम	४०४	१०	१०४
करंज	३०५	०७	१०३
महुआ	२०६	०८	२०८

खलियों की खाद की मात्रा इतनी होनी चाहिए कि नाइट्रोजन १० सेर से ३० सेर तक प्रति एकड़ खेत में पहुँच जाय।

राख की खाद

राख की खाद लाभदायक होती है। इसमें पौदे के भोजन का अंश पोटाश अधिक रहता ह। जली लकड़ी की राख में ५-७% तक पोटाश रहता है। हर तरह की हरियाली की राख में पोटाश का अंश और भी अधिक रहता है। केला,

ज्वार, बाजरा, मक्का, कपास, गन्ना आदि के डंठलों को जलाकर इनकी राख गोबर तथा वानस्पतिक खाद के साथ उपयोग करने से बड़ा लाभ होता है।

राख की खाद का प्रयोग पौदों के बढ़ जाने पर किया जाता है। इस समय राख देने से पौदों को भोजन मिलता है। पत्तियों पर राख पड़ने से कीड़े-मकोड़े नहीं लगते, और रोगों से पौदों की रक्षा होती है। यह खाद हर फ़सल के लिये लाभप्रद है।

पक्षियों की बीट की खाद

कबूतर, मुर्ग़ी, बतख और चमगीदड़ आदि पक्षियों की बीट की खाद बहुत लाभकारी होती है। यह खाद भी गोबर की तरह गड्ढे में भरकर तैयार की जाती है। इसे अकेला नहीं डालते, दस सेर पानी में पाव-भर खाद मिलाकर छिड़की जाती है। इस खाद से शाक-भाजी, उर्द, गन्ने आदि को बड़ा लाभ पहुँचता है।

निर्जीव खाद

अंडी की खली, महुआ की खली, नीम की खली, राख की खाद, पक्षियों की बीट, शोरा, चूना आदि खाद निर्जीव खाद कहलाती है।

उपयोग का समय—(१) जब भूमि की जुताई अच्छी तरह हो जाती है, तब ऐसी खाद विशेष लाभप्रद होती है।

(२) वर्षा आनेवाली हो, उस समय यह खाद न डालनी चाहिए, क्योंकि यह पानी में घुलकर बह जाती है, अतः खेतों में खाद डालने का समय ध्यान में रखना चाहिए।

(३) स्फुर और पोटाश की खाद बीज बोने के कुछ दिन पूर्व भी डाली जा सकती है। परंतु नेत्रजन की कुछ ऐसी खादें हैं, जिन्हें बोने के थोड़े समय पहले ही डालना चाहिए। बहुत-सी खादें ऐसी हैं, जिन्हें फ़सल के कुछ बढ़ जाने पर डालना उचित है।

(४) इन्हें इस रीति से देना चाहिए कि ये फ़सल के पत्ते पर न गिरने पावें। क्योंकि पत्ते पर गिरने से ये उसे जला देंगी, और फ़सल को भारी हानि होगी। इसलिये इन खादों को जड़ों के पास सँभालकर डालना चाहिए।

मिश्रित खाद

(१) खली के चूरे के साथ गाय, बैल आदि पशुओं का पेशाब मिलने से जोरदार खाद बन जाती है।

(२) १० मन गोबर में १ मन खारी नमक और बुझाया हुआ चूना मिलाने से ईख के लिये उपयोगी खाद बन जाती है।

(३) १२० मन गोबर, ६ मन हड्डी का चूरा और २० मन राख ईख के वास्ते अच्छी खाद है।

(४) ४० मन गोबर, १० मन राख, ५ मन हड्डी का चूरा, ३ मन सरसों की खली मिलाने से मूल की फ़सलों के लिये बड़ी उत्तम खाद बन जाती है।

भेड़, बकरी की लेंड़ी की खाद

गोबर की अपेक्षा इसमें उर्वर-तत्त्व अधिक होते हैं, और पौधे को अधिक अच्छा भोजन मिल सकता है। यह खाद अच्छी और क़ीमती फ़सलों और पौधों को दी जाती है। इसके अंश गोबर की अपेक्षा बारीक होते हैं, और पानी भी कम रहता है। इसे चूरा करके खाद के तौर पर गलाकर देना चाहिए।

कम्पोस्ट खाद बनाने की रीति

गाय, भैंस, बैल, घोड़ा आदि के रहने के स्थान पर जो घास काटकर बिछाई जाती है, वह जब पेशाब, गोबर आदि से सन जाती है, तो उसे एक गड्ढे में डाल देते हैं। इस प्रकार जब गड्ढा आधा भर जाय, तो उसे पानी से भर देना चाहिए। यह पानी घास से बालिश्त-भर ऊपर रहे। फिर जब झाग उठने लगे, तो उस गड्ढे को मिट्टी या उसी तरह की पेशाब आदि मिश्रित घास से भरकर लीप देना चाहिए। ५-६ मास तक उसी प्रकार बंद पड़ा रहने देना चाहिए, तो एक बढ़िया कंपोस्ट खाद तैयार हो जायगी। यह सब फ़सलों के लिये उपयोगी खाद है।

गोबर की खाद

भारतवर्ष के सभी प्रांतों में गोबर की खाद काम में लाई जाती है। परंतु गोबर की खाद तैयार करने की रीति

इतनी बुरी है कि खाद के उपयोगी तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। ऐसी खाद मरी खाद कहलाती है।

इस खाद के उपयोगी तत्त्वों के संरक्षण का यही उपाय है कि उसे ठीक ढंग से रक्खा जाय। इस खाद को गड्ढे में इकट्ठा करके ऊपर छाया कर देनी चाहिए, जिससे उपयोगी तत्त्व हवा, वर्षा और धूप में उड़कर नष्ट न होने पावें। गड्ढे के चारों ओर दो फ़ीट ऊँची दीवार उठा देनी चाहिए। जिससे बरसात का पानी अंदर न जा सके। फिर भी गोबर सूखने न पावे, यह ध्यान में रखना चाहिए। सड़ने के लिये तरी की आवश्यकता होती है, अतः गोबर के ढेर पर पानी छिड़कते रहना चाहिए। यदि बर्तनों का धोवन, पेशाब, जूठन का पानी प्रतिदिन गोबर पर छिड़का जाय, तो अच्छा है। परंतु वर्षा के दिनों में अधिक न छिड़का जाय, नहीं तो खाद के गुण जमीन में चले जायँगे, और खाद के तत्त्व कम पड़ जाने से वह निर्बल हो जायगी।

गोबर आदि पदार्थों का सड़ना प्रारंभ होते ही उनका नत्रजन एक ऐसे रूप में बदल जाता है कि वह भाप बनकर हवा में उड़ जाता है। और, यही कारण है कि खाद के ढेर पर छाया रहने की आवश्यकता होती है। इस ढेर पर कभी-कभी मिट्टी भी डालते रहना चाहिए। क्योंकि मिट्टी नत्रजन के रूप विशेष (अमोनिया) को सोखकर सुरक्षित कर लेती है, और वह भाप बनकर उड़ने नहीं पाता।

पेशाब की खाद

इस देश में गोबर की खाद का उपयोग तो न्यूनाधिक परिमाण में सर्वत्र किया जाता है, परंतु पेशाब का उपयोग नहीं होता। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध है कि गोबर की अपेक्षा पेशाब में खाद्य तत्त्व अधिक परिमाण में होते हैं। परंतु भारतीय किसान इस बात को नहीं समझतें, और न उसका उपयोग ही करते हैं। इसके संरक्षण और संग्रह की रीति यह है—

जिस जगह गाय, भैंस, बैल आदि जानवर बँधते हों, वहाँ की ज़मीन खोदकर एक बालिश्त गहराई तक ढीली कर देनी चाहिए। और, क़रीब एक वर्ष बाद इस मिट्टी को खोदकर खेत या खाद के गढ़े में डाल देना चाहिए, और नई मिट्टी पशुशाला में बिछा देनी चाहिए।

कहीं-कहीं पशुओं के नीचे घास, पत्ते आदि बिछावन के तौर पर फैला देते हैं। इससे दो लाभ हैं—(१) पशुओं को गरम बिछौना मिल जाता है। (२) पेशाब इकट्ठा हो जाता है। इस पद्धति में यह दोष अवश्य है कि पेशाब का कुछ अंश नीचे की जमीन में उतर जाता है। मनुष्य का पेशाब भी उत्तम खाद है, परंतु यह उन्हीं स्थानों में जमा किया जाता है, जहाँ मनुष्य अधिक संख्या में रहते हों। पाठशाला, कचहरी और कारख़ाने आदि के पास काफ़ी संख्या में पेशाब-घर बनाए जायँ, और सब पेशाब एक बड़े हौज़ में पहुँचा दिया

ज़ाय। इस हौज़ में मिट्टी भर दी जाय। वह मिट्टी पेशाब को सोखती रहेगी। ख़ूब गीली होने पर वह मिट्टी हटाकर खेत या खाद के गढ़े में डाल देनी चाहिए, और हौज़ में नई मिट्टी भर दी जाय। इसी प्रकार परनालों का पानी भी उत्तम खाद है। इसे भी जमा किया जा सकता है।

हरी खाद

सन, मूँग, नील, उड़द, ढंचा आदि की फ़सलों को फूल आने के पहले या बाद में शीघ्र ही हल चलाकर या अन्य रीति से खेत की मिट्टी में मिला देने की क्रिया को हरी खाद देना कहते हैं। हरी खाद के लिये चुनी खली फ़सलों में निम्न-लिखित गुण होने चाहिए—

(१) पौदा ज्यादा पत्तेवाला हो, (२) वह शीघ्र बढ़ने-वाला हो, (३) तना और शाखा आदि कड़े न हों, (४) द्विदल (फलीदार) जाति का हो।

हरी खाद खेतों में उसी समय देनी चाहिए, जब कि उसके बाद ६ या ७ इंच वर्षा होने की संभावना हो। यदि काफ़ी पानी न बरसेगा, तो खाद न सड़ेगी। विना सड़ी खाद के कारण ज़मीन में एक प्रकार का क्षार उत्पन्न हो जाता है, जो फ़सल के लिये हानिकारक है।

पौदे के तने कड़े न होने पावें, इसके पहले ही हल जोतकर फ़सल को खेत की मिट्टी में गाड़ देना चाहिए। हरी खाद देने से निम्न-लिखित फ़ायदे होते हैं—

(१) जमीन सुधर जाती है, (२) रेतीली भूमि की जल ग्राहक शक्ति बढ़ जाती है, (३) जमीन की जल-धारक शक्ति भी बढ़ जाती है। (४) चिकनी मिट्टीवाली जमीन भुरभुरी हो जाती है। (५) खेत की उर्वर-शक्ति बढ़ जाती है।

विशेष खाद

हमारे देश में विशेष खादों का उपयोग बहुत ही कम होता है। सरकारी कृषि-फ़ार्मों में तो इनका उपयोग होता है, और ये सोडियम नाइट्रेट, अमोनिया, सल्फ़ेट, सुपर आदि खादों का उपयोग करते हैं। परंतु साधारण जनता इन खादों के विषय में कुछ भी नहीं जानती।

(१) सोडियम नाइट्रेट में नत्रजन का परिमाण १५% तक रहता है। इसे उसी खेत में डालते हैं, जिसमें फ़सल खड़ी होती है। एक एकड़ जमीन में इसकी ५० सेर खाद काफ़ी होती है। खाद को महीन मिट्टी में मिलाकर छिड़क देते हैं। यह खाद उसी समय छिड़कनी चाहिए, जब वर्षा से इसके धुल जाने का भय न हो। इस खाद से पौदों के पत्तों और शाखाओं की खूब वृद्धि होती है। कपास के लिये यह खाद बहुत लाभदायक है। खली की खाद की जगह इसे काम में ला सकते हैं।

(२) अमोनिया सल्फ़ेट सोंठे (गन्ने) और गेहूँ में आबपाशी के समय दिया जाता है।

(३) सुपर हड्डी से बनाया जाता है। यह भी सौंठों को दिया जाता है।

(४) हड्डी कई रूप से काम में लाई जाती है। जैसे हड्डी का चूरा, हड्डी का कोयला और हड्डी के टुकड़े आदि। हड्डी के छोटे-छोटे टुकड़े करके खेत में डाल देते हैं। वे धीरे-धीरे खेत में गलते रहते हैं।

ऊपर संक्षेप में उन्हीं खादों पर विचार किया गया है, जिन्हें किसान ज्यादातर काम में लाते हैं। संसार के अधिकांश पदार्थ खाद की तरह काम में लाए जा सकते हैं।

खाद रखने का तरीका

खाद रखने के लिये कोई ऐसी जगह चुन ली जाती है, जो ऊँचाई पर हो। जहाँ पानी न भर सके, वहाँ एक गड्ढा खोद लेना चाहिए और उसे पीटकर सख्त कर दिया जाय, जिससे भूमि खाद के तत्त्वों को अधिक न सोख सके। ये गड्ढे चौकोण होते हैं। भीतरी भाग कूटकर लीप दें, तो अच्छा है। २५-३० पशुओं के गोबर की खाद के लिये २० फ़ीट लंबा, १५ फ़ीट चौड़ा और ५ फ़ीट गहरा गड्ढा खोदना चाहिए। इस गड्ढे में गोबर के साथ कूड़ा-करकट, फटा कंबल, ऊन, बाल, हड्डी, घोड़ा, हाँथी, ऊट की लीद सड़ाकर काम में ला सकते हैं।

घोड़े की लीद अधिक गरम होने से अधिक गलाकर खाद

के काम में लाई जाय। यह खाद एक वर्ष में तैयार होती है, और दूसरी फ़सल बीत जाने पर काम में लाई जा सकती है।

सुअर की विष्ठा की खाद आलू आदि कंदवाले पौदों के लिये बहुत उपयोगी है। जहाँ यह अधिक मिलती है, वहाँ तरकारी बोनेवाले किसान इसका उपयोग करते हैं। अगर सुअर की विष्ठा थोड़ी मात्रा में हो, तो गोबर के साथ गला लेनी चाहिए। जहाँ अधिक मिल सके, जैसे पहाड़, समुद्र या तालाब के तट पर अथवा बसेरेवाले पेड़ों के नीचे, तो इसे अलग गड्ढे में सड़ाना अच्छा होगा। शाकभाजी के लिये यह खाद बहुत उपयोगी होती है। चमगीदड़, अबाबील, तमाम चिड़ियाँ, मुर्गी, बतख़ की बीट, ऊख की छोई की राख भी खाद के काम में आती है।

सिवार तथा उसकी राख, पलास के फूल और उसके पत्ते की राख मिलाकर भी बढ़िया खाद बन जाती है। ये खादें बहुत उपयोगी हैं। इनसे फसल को बहुत लाभ पहुँचता है। इन खादों का वैज्ञानिक विश्लेषण करते रहना चाहिए, जिससे इनसे उचित लाभ उठाया जा सके।

बीज

पौधे का सर्वस्व बीज ही है। जैसा बीज बोया जायगा, वैसा ही पौधा उगेगा। अतः हमको बीज चुनने में सबसे अधिक सावधानी रखनी चाहिए। ख़राब बीज बोने से अच्छा फल कभी नहीं हो सकता। चुनते समय देख लेना चाहिए कि बीज मोटा और चमकीला हो। उसका रंग काला न हो। जिस जाति का बीज हो, उसी जाति के रंग के समान हो। बीज में कचरा, कंकड़ और दूसरी जाति का मेल न हो, और वह सड़ा, कीड़ा-लगा और दुर्गंध-युक्त कदापि न हो। ख़रीदते समय यह भी देख लेना चाहिए कि वह इसी प्रांत का है या बाहर का। यदि बाहर का हो, तो पता लगा लेना चाहिए कि फ़सल कैसी आई थी, और यह बीज कहाँ तक उगने की शक्ति रखता है। यदि समय अधिक हो, तो पाँच-सात नमूने के सौ-सौ बीज लेकर अलग-अलग तोल लिए जायँ। जिस नमूने के सौ बीज का वज़न सबसे अधिक हो, वही ख़रीदा जाय। बीज के उगने की शक्ति जाँचने की तरकीब यह है कि हरएक नमूने के सौ-सौ बीज लेकर किसी गमले या मिट्टी के ठीकरे में रेत भरकर बो दिए जायँ। प्रतिदिन प्रत्येक नमूने के बीज गिन लिए जायँ। तीन दिन बाद जिस नमूने के सबसे ज़्यादा बीज

उग आवें, वही उत्तम मानकर ख़रीद लिया जाय। बीज की जनन-शक्ति प्रति सैकड़ा इस प्रकार निकालना चाहिए—

जितने पौधे उगे हों, उनको सौ से गुणा करो, और उस गुणन-फल को जितने बीज बोए हैं, उनसे भाग कर दो। उगने की शक्ति का पता लग जायगा। उदाहरण के लिये मान लिया, ४०० बीज बोए गए, और ३२० बीज उगे, तो $\frac{३२० \times १००}{४००} =$ ८० प्रतिशत बीज उगे। यही इन बीजों की प्रति सैकड़ा उगने की शक्ति है। बीजों को कम-से-कम ६० प्रति सैकड़ा उगने-वाला होना चाहिए। इस कारण उपर्युक्त प्रकार के बीज नहीं बोने चाहिए, क्योंकि मान लिया, कोई व्यक्ति ७० प्रतिशत जनन-शक्ति के बीज बोता है, तो सौ सेर में ३० सेर बीज तो ख़राब ही हो जाते हैं। यह हानि कितनी बड़ी है।

यदि बीजों को अपने ही खेत की बालियों या भुट्टों से चुनना हो, तो उसी पौधे की बाली या भुट्टा चुना जाय, जो नीरोग और ज़ोरदार हो, और उसके दाने बड़े और चम-कीले हों, और दाने खूब भरे हों। चुनाई उसी खेत के भुट्टों से की जाय, जिसमें फ़सल ख़ूब अच्छी आई हो। चुनाव के बाद दाने अलग कर दिए जायँ और तब फटककर कमज़ोर दाने अलग कर दिए जाँय और सूप से मोटे-मोटे दाने अलग कर लिए जायँ।

बीजों में उगने की शक्ति कुछ निश्चित काल तक ही रहती है। समस्त बीज प्रायः १० वर्ष में अपनी जनन-शक्ति खो देते

हैं। जैसा पहले वर्ष का बीज होता है, वैसा दूसरे-तीसरे वर्ष का नहीं होता। गेहूँ, जौ, जई, मक्का का दो वर्ष से अधिक पुराना और मटर, सेम, सरसों, शलजम आदि का चार वर्ष से अधिक पुराना बीज बोने योग्य नहीं रहता।

बीज उगाने के लिये तीन बातों की विशेष आवश्यकता पड़ती है—(१) नमी, (२) वायु, (३) गर्मी। ये ही तीन बातें उसको उगाकर पौधा बना देती हैं। प्रत्येक बीज में वृक्ष की सारी बातें पहले से ही विद्यमान रहती हैं। पर यह कितनी रहस्यमय बात ह। बरगद या पीपल के अत्यंत सूक्ष्म बीज देख-कर कौन कह सकता है कि इसके गर्भ में महान् वृक्ष छिपा है। प्रत्येक शक्ति अपना अलग-अलग प्रभाव बीज पर डालती है। फलतः बीज में जड़ें पड़ने लगती हैं। नमी अर्थात् जल से बीज फूल जाता है, और उसकी झिल्ली जो चारों ओर चिपटी होती है, फट जाती है। वायु पौधे का जीवन है। जिस प्रकार हम लोग साँस लेते हैं, उसी भाँति पौधे भी आरंभ से साँस लेना शुरू कर देते हैं, गर्मी से पौधा बढ़ता और अपना भोजन प्राप्त करता है। नीचे के प्रयोग से यह भली भाँति प्रकट हो जायगा कि किस प्रकार बीज उगता है।

अगले चित्र में सूरजमुखी का बीज दो प्रकार से दिखाया गया है। (क) चित्र में बीज की वह अवस्था दिखाई गई है, जो लंबे-लंबे बीज को काटने से दिखाई पड़ेगी, और (ख) चित्र में बीज की एक दाल अलग करके दिखाई गई है। अब

एक सूरजमुखी के बीज को लेकर उसे पानी में भिगो दो, तो वह फूल जायगा। यह ध्यान रखना चाहिए कि (क) चित्र में दिए हुए बीज के भाग किस प्रकार अपना काम करते हैं।

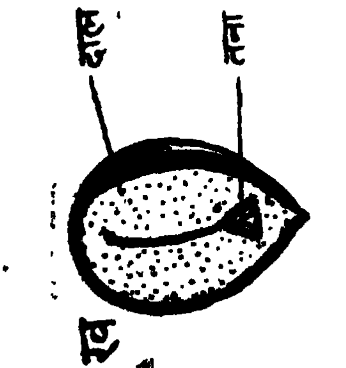

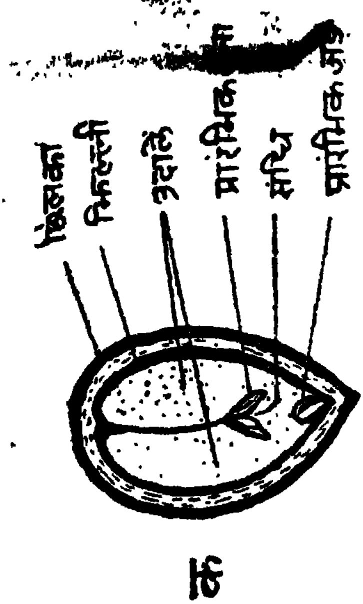

बीज फूल जाने पर चाक़ से बीज के ऊपर का भाग धीरे-धीरे अलग करो। छिलका उतर जाने पर उसके भीतर बीज दिखाई पड़ेगा, जिस पर एक बारीक झिल्ली लिपटी होगी। इस झिल्ली को भी उतार दें, तो भीतर से एक पेड़ का अँखुआ-सा दिखाई पड़ेगा, जिसका एक सिरा नोकदार बना हुआ है। इस भाग को हम प्रारंभिक जड़ कह सकते हैं, क्योंकि यही भाग पृथ्वी के नीचे बढ़ता हुआ जड़ के रूप में जाता है। इस जड़ के स्थान से ऊपर हम बीज को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं, जिन्हें हम दो दालें कह सकते हैं।

इन्हीं दोनो दालों में आगामी पौधे का भोजन भरा है। यदि इन दोनो दालों को धीरे-धीरे अलग कर दिया जाय,

तो इन दोनो दालों के बीच में एक छोटी-सी नोकदार चीज़ मिलेगी, जिसे प्रारंभिक तना कह सकते हैं। जिस स्थान पर ये दोनो दालें मिली हुई हैं, उसे संधि कहते हैं।

दाहनी ओर के चित्र में उगता हुआ सूर्य-मुखी का फूल दिखाया गया है। जब तक बीज मिट्टी में दबा नहीं दिया जाता, सूखा रहता है। तब तक उसमें जीवन तो रहता ही है, परंतु उसकी सब शक्तियाँ छिपी रहती हैं। जब उसे उगने के लिये धरती में नमी तक गरमी पहुँचाई जाती है, तो उसकी छिपी हुई शक्तियाँ अपना कार्य आरंभ कर देती हैं, और बीज उगने तथा पौधा बन जाने का काम शुरूकर देता है। सब से पहले बीज धरती की नमी चूसकर फूलने लगता है। उस समय बीज का छिलका तथा झिल्ली, दोनो ही नोकदार स्थान से फटना आरंभ कर देते हैं। प्रारंभिक जड़ का नोकदार स्थान पहले लंबा होने लगता है, जैसा 'क'

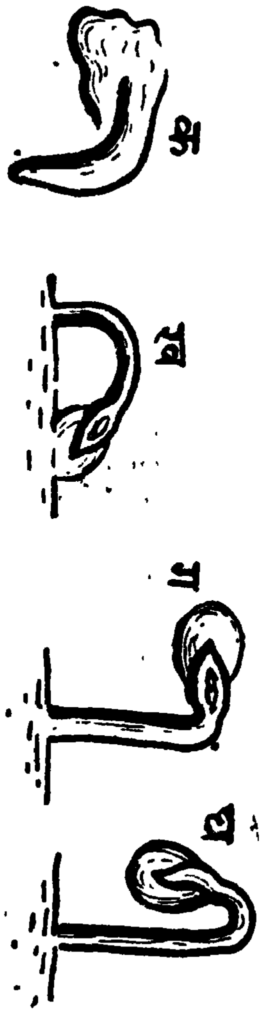

चित्र में दिखाया गया है। इसके बाद धरती के भीतर जाने लगता है। तुरंत ही दो दालों के बीच में

जो प्रारंभिक तना होता है, वह ऊपर की ओर फूटकर बढ़ना आरंभ कर देता है। यह अपने साथ दालों को भी ले जाना शुरू कर देता है, और ये दालें बड़ा काम करती हैं। ज्यों-ज्यों इनको सूर्य का प्रकाश मिलता है, त्यों-त्यों इनका रंग बदलने लगता है। पहले अधिक गाढा पीला, फिर कुछ कम और अंत में ये हरे रंग की हो जाती हैं। जब पहलेपहल बीज का उगा हुआ भाग पृथ्वी के ऊपर दिखाई पड़ता है, तब यह प्रारंभिक तना कमान के समान अर्ध-गोलाकार दिखाई पड़ता है, जैसा चित्र 'ख' में दिखाया गया है। धीरे-धीरे वह तना और बढ़कर 'ग' चित्र का रूप धारण कर लेता है। सबसे अंत में वह तना बढ़कर 'घ' के समान पेड़ दिखाई पड़ता है। प्रायः सभी दो दालोंवाले पौधों का उगना ऐसा ही होता है।

अगले पृष्ठ पर तीन चित्र दिए गए हैं। चित्र नं० १ में मटर का बीज दिखाया गया है। मटर के बीज में एक स्थान पर एक बारीक चिह्न पाया जाता है, जहाँ से वह फली के भीतर एक छोटे-से सूत्र से जुड़ा हुआ था। पक जाने पर सूत्र टूट गया, और बीज स्वयं फली के भीतर अलग हो गया। यदि मटर का बीज पानी में डाल रक्खें, और जब वह फूलकर मोटा हो जाय, तब उसे उँगली से थोड़ा दाब दें, तो पानी निकलता हुआ दिखाई देगा, जिसे हमने 'बीज-छिद्र' के नाम से चित्र में दिखाया है। चित्र नं० २ में मटर के

बीज के वे ही भाग अलग-अलग दिखाए गए हैं, जो सूर्यमुखी के फूल में दिखाए गए थे, जिससे पाठक दोनों बीजों के भागों को देखकर अंतर अपने आप समझ लें।

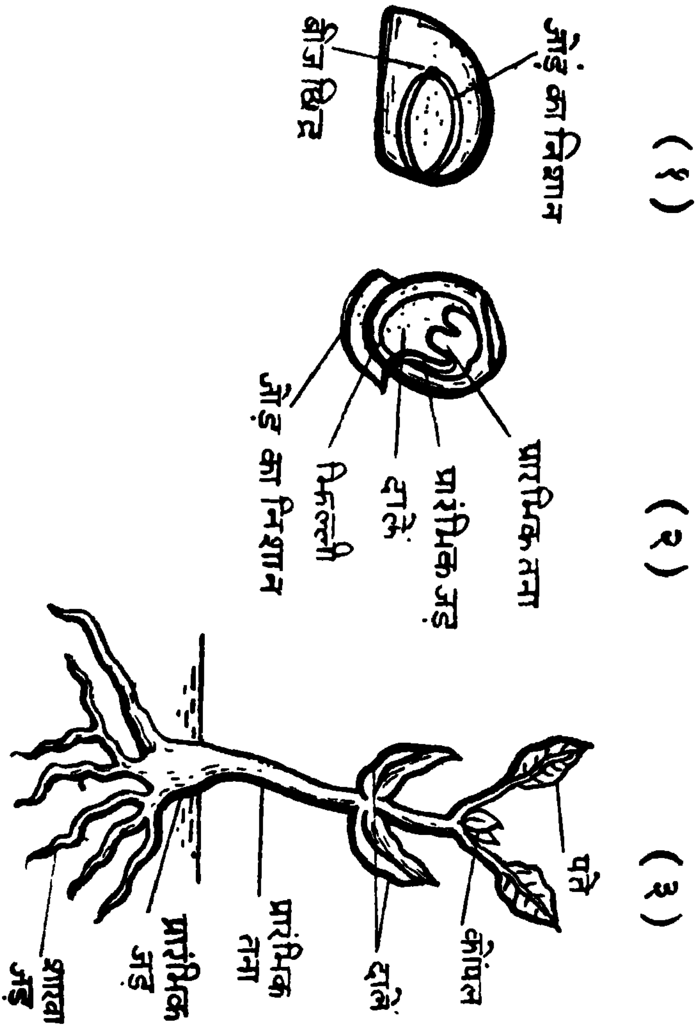

अच्छा तो तभी हो, जब स्वयं एक मटर का बीज हाथ में लेकर और लिखे के अनुसार सारी क्रियाएँ करके स्वयं

देखें। चित्र नं० ३ में मटर के पेड़ की उगने पर जो अवस्था होती है, वह दिखाई गई है। इसमें नीचे की ओर जड़ों की अनेक शाखाएँ दिखाई गई हैं। उसके ऊपर प्रारंभिक जड़ तथा प्रारंभिक तना दिखाया गया है। उसके ऊपर दोनो दालें हैं। जो पहले पत्ते बने हैं, उनके ऊपर छोटे-छोटे पत्ते हैं। तने के बीच में नए पत्ते बनने के लिये कोपल निकलती हुई दिखाई गई है। ग़ौर से देखने पर पता चलेगा कि सूर्यमुखी और मटर के बीज के उगने में थोड़ा-सा भेद है, जो चित्र देखने से भली भाँति समझ में आ जायगा।

चना, अरहर, उर्द, मूँग, रौंसा (लोबिया) आदि ऐसे बीज हैं, जिनमें दो दालें होती हैं। इनका उगना प्रायः मटर के समान ही होता है।

ऊपर ७ चित्र दिखाए गए हैं, ये चित्र एक ऐसे बीज के हैं, जिसमें सूर्यमुखी और मटर के बीज के सदृश बीच में दो दालें नहीं होतीं। ऐसे बहुत-से बीज होते हैं, जैसे जौ, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, कपास, मकी आदि। पाठक देखेंगे कि इन बीजों के उगने का क्रम बिलकुल दूसरा ही है। इसी कारण उपर्युक्त ७ चित्रों में एक मकी के बीज के उगने की अवस्थाएँ भिन्न समय की दिखलाई गई हैं। उगने में सहायता करने-वाले तत्त्व सब प्रकार के बीजों में एक-से ही होते हैं, और उगने में भरपूर अपना काम करते हैं। फिर भी उगने का क्रम भिन्न-भिन्न बीजों में अलग-अलग ही होता है। खजूर,

आम, जामुन आदि की गुठली उगती है, जिसका वर्णन बहुत मनोरंजक है। यहाँ पहले मकी के बीज पर ही विचार करते हैं।

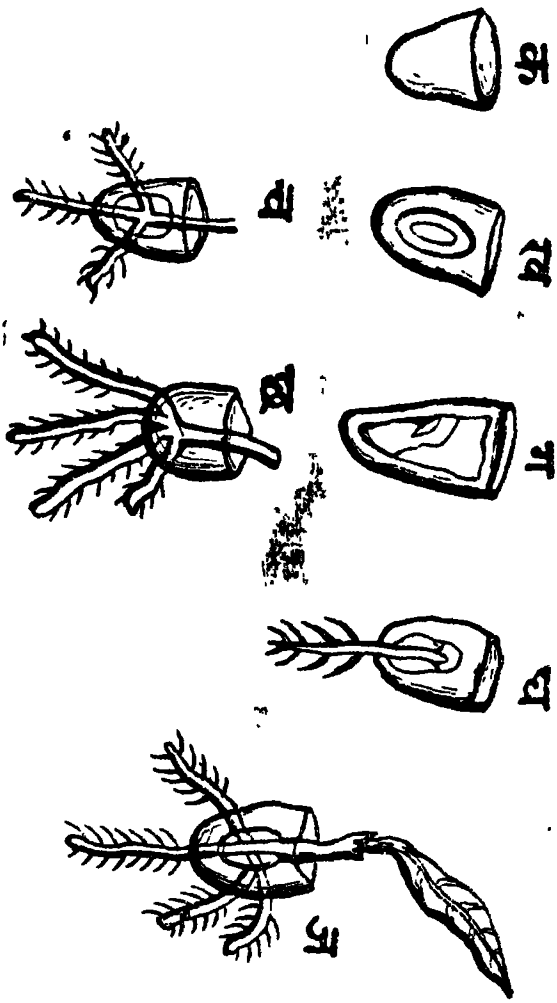

'क' और 'ख' चित्रों में बीज का स्वरूप, जैसा वह दिखाई पड़ता है, दिखाया गया है। यदि हम किसी मकी

के बीज को काटें, तो वह 'ग' चित्र के समान दिखाई पड़ेगा। 'घ' चित्र अधिक ध्यान देने योग्य है। इसमें बीज का वह परिवर्तन दिखाया गया है, जब बीज के उगते समय प्रारंभिक काल में उसकी दशा बदलने लगती है। देखो, प्रारंभिक जड़ लंबी होकर धरती के भीतर नीचे की ओर जा रही है। इसके आगे का चित्र 'च' यह दिखाता है कि जड़ में आगे चलकर किस प्रकार वृद्धि होती है। मोटी जड़ से दो शाखाएँ निकलकर इधर-उधर फैल गई हैं, और प्रारंभिक तना भी ऊपर उठता हुआ दिखाई देता है। 'छ' चित्र 'च' का परिवर्द्धित रूप है, अर्थात् जड़ें संख्या में भी अधिक हो गई हैं, और प्रारंभिक तना और ऊँचा हो गया है। 'ज' चित्र में जड़ें खूब खुलकर पृथ्वी के भीतर फैल रही हैं, और प्रारंभिक तने से पहला पत्ता निकल रहा है। मकी के दाने में दो दालें नहीं होतीं, इस कारण दालें पत्तों के रूप में नहीं बदल सकतीं, वरन् पहले तना बढ़ता है, और उसी से पत्ते निकलना शुरू हो जाते हैं।

'ज' चित्र में पौधे की जो अवस्था दिखलाई गई है, उसके आगे नया पौधा बन जाता है। उसमें जड़ें भी लच्छेदार होकर पृथ्वी के भीतर जाल-सा बना देती हैं, और पत्ते खूब निकल आते हैं।

अगले पृष्ठ के चित्रों में एक घिया का बीज लिया गया है, और उसकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ दिखाई गई हैं। चित्रों

को देखने से स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि किस प्रकार बीज उगते समय भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में बदलता हुआ अंत में

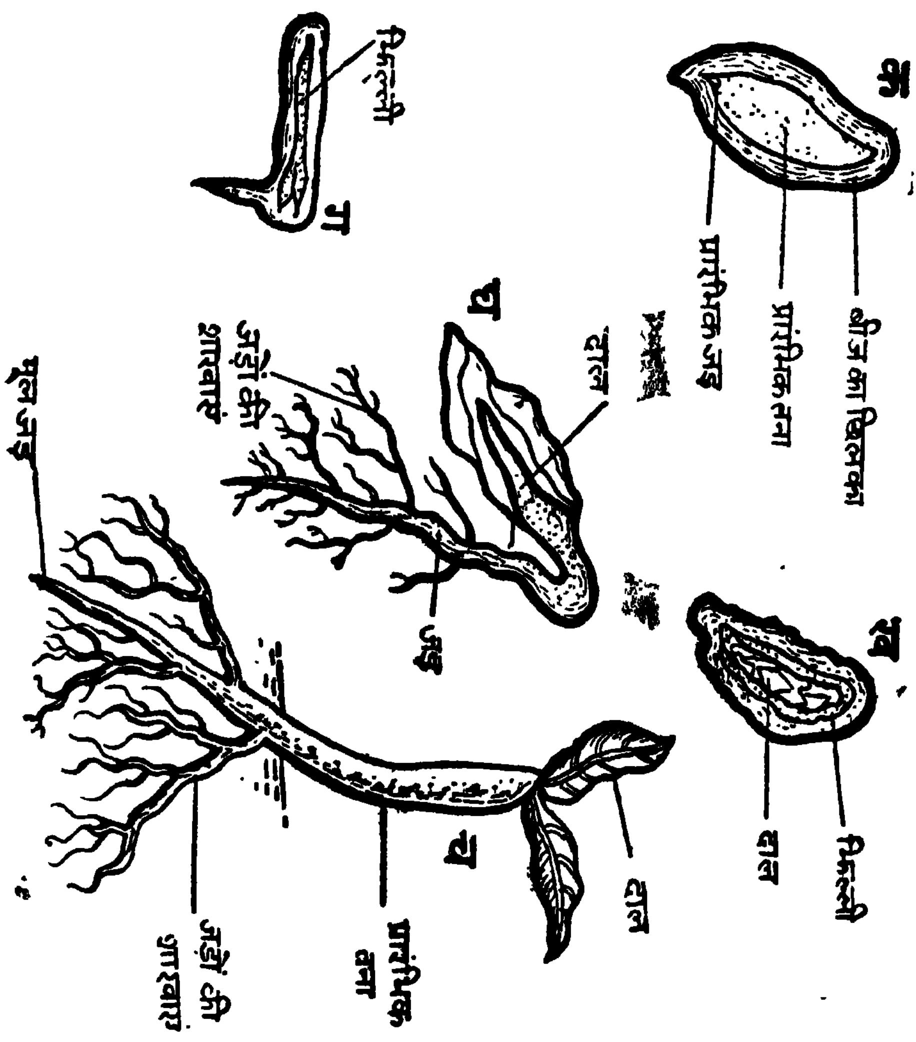

पौधे के रूप में हो जाता है। 'क' चित्र में बीज और उसके ऊपर का छिलका दिखाया गया है। 'ख' चित्र में बीज

की प्रारंभिक अवस्थाएँ, जैसे प्रारंभिक तना, प्रारंभिक जड़, दालें और बीज की झिल्ली, दिखाई गई हैं। 'ग' चित्र में बीज उपजता हुआ दिखाया गया है। सबसे पहले जड़ पृथ्वी में जाती हुई दिखाई पड़ती है, और झिल्ली फूलकर कुछ आकार में बढ़ गई है। प्रारंभिक तने पर दालें लगी हुई दिखाई पड़ रही हैं। 'घ' चित्र में जड़ नीचे चली गई है, इसमें शाखाएँ हो गई हैं, और तना ऊँचा उठकर दालें ऊपर आ रही हैं। 'च' चित्र में जड़ों में शाखाएँ दिखाई देती हैं, तथा प्रारंभिक तना लंबा होकर पहले दालों के पत्ते दिखाई पड़ते हैं।

कुछ बीज केवल तने के टुकड़ों के रूप में ही बोए जाते हैं, जैसे गन्ना। ऐसे बीजों को चुनते समय बड़ी सावधानी चाहिए। बोने के लिये वही गन्ना लेना चाहिए, जो पूरा बढ़ा हुआ और स्वस्थ हो। जिस गन्ने की पत्तियाँ सूखकर पहले ही गिर गई हों, और जिसकी आँखें कुछ काली दिखाई दें, उसे बोने के काम में न लाना चाहिए। गन्ने की पत्ती (पाती) प्रत्येक आँख को सुरक्षित रूप से छिपाए रहती है। जब बोने का समय आवे, तभी पत्ती को आँख पर से तोड़कर फेंकना चाहिए। गन्ने को जड़ से काटकर धीरे-धीरे पृथ्वी पर गिरावे, और उसकी पत्तियाँ साफ़ करके आग तोड़ते समय हँसिया का उपयोग बिलकुल न करना चाहिए। संभव है, पत्ती छीलते समय हँसिया आँख में लग जाय, तो वह

उगने के अयोग्य हो जायगी। गन्ने को ऐसे टुकड़ों में काटे कि प्रत्येक टुकड़े में कम-से-कम तीन आँखें रहें। और, टुकड़े को इस प्रकार बोए कि आँखें इधर-उधर साइड में रहें, नीचे-ऊपर न रहें। सही तरीक़ा चित्र में दिखाया गया है—

ये ही आँखें नमी पाकर कुछ फूल जाती हैं, और दो-एक दिन में उनमें से सफ़ेद-सफ़ेद एक नोक-सी निकलती है, जो भीतर से गन्ने से ही भोजन प्राप्त करती है। जैसे यह नोक बढ़ती है, गन्ना सड़ता जाता है, और उसका सारा रस नोकें चूस लेती हैं। धीरे-धीरे नोकें ऊपर उठने लगती हैं, और पृथ्वी के ऊपर आ जाती हैं। गन्ना भी पूरा सड़कर मिट्टी में मिल जाता है, और उसमें से कई जड़ें फूटकर नीचे की ओर चल देती हैं, जो ऊपर गए हुए कल्लों के लिये भोजन चूसती हैं। ऊपर की नोक सफ़ेद से हरी हो जाती और एक लंबी पत्ती का रूप धारण कर लेती है। उसके नीचे का भाग तना होता है, जो बढ़ने लगता है।

पौधे और पेड़ के अवयव

प्रत्येक पौधे के पाँच भाग होते हैं—(१) जड़, (२) तना, (३) कपत्ती, (४) फल, (५) फल।

जड़

जड़ें दो प्रकार की होती हैं—(१) झकरा, (२) मूसला। पौधे का जो भाग ज़मीन के अंदर रहता है, वह जड़ कहलाता है।

झकरा जड़—जो ज़मीन के आस-पास छितरी हुई दशा में फैलती है, वह झकरा जड़ कहलाती है। जैसे ज्वार, बाजरा, गेहूँ आदि की जड़ें।

मूसला जड़—जो ज़मीन के अंदर सीधी जाती और एक ही मोटे रूप में रहती है, वह मूसला जड़ कहलाती है। जैसे चना, अरहर आदि की जड़ें।

आयु-भेद से पौधे ३ प्रकार के होते हैं। प्रतिवर्ष फल देने-वाले फ़सली पौधे कहलाते हैं। जैसे जौ, चना, ज्वार आदि। ये पौधे एक ही ऋतु में उगते, फूलते और फलते हैं, उसके बाद झड़कर मुरझा जाते हैं।

दूसरे प्रकार के पौधे दुफ़सली कहलाते हैं। ये पौधे वर्ष की दोनो फ़सलों में फल देते रहते हैं। जैसे मूली, गाजर, चुकंदर, गोभी आदि।

तीसरे प्रकार के पौधे सदाबहार कहलाते हैं। जैसे कनेर, कुरबक आदि।

जड़ का काम—जड़ के तीन काम होते हैं—(१) भूमि पर पौधे को स्थिर रखना। (२) जड़ द्वारा भूमि से ख़ुराक लेकर पौधे तक पहुँचाना, जिससे पौधा बढ़ सके, और अपना पालन कर सके। (३) पौधे का भोजन इकट्ठा करके रखना।

जड़ों के सिर पर एक प्रकार का ढक्कन-सा होता है, जिसे जड़ की टोपी कहते हैं। यह जड़ों के कोमल भाग और आगे हिस्से की रक्षा करती तथा ज़मीन के अधिक भीतर जाते समय टूटने से बचाती है। जड़ों में छोटे-छोटे रेशे होते हैं, वे ही मूल-तंतु कहलाते हैं। इनका काम केवल यही है कि मिट्टी से पानी और खाद्य पदार्थ लेकर पौधे के अन्य अंगों तक पहुँचा देते हैं।

तना

तने के भी कई काम हैं—

(१) जो भोजन जड़ें ज़मीन से लेती हैं, उसे शाखों और पत्तों तक पहुँचाना, जहाँ पहुँचकर भोजन पचता है।

(२) जो भोजन पत्तियाँ वायु से ग्रहण करती हैं, उसे जड़ों और पेड़ के पत्तों तक पहुँचाना।

(३) पत्तियों को इस तरह साधे रहना कि इन्हें प्रकाश और हवा अच्छी तरह मिलती रहे।

(४) पत्ती और फूलों को स्थिर रखना।

(५) गन्ना, आलू-जैसी चीज़ों के तने बीज के काम भी आते हैं।

तने की क़िस्में—

तने कई प्रकार के होते हैं—कुछ गोल, कोई चपटे, कुछ सख्त, कोई मुलायम, कुछ काँटेदार और किसी पर रोएँ होते हैं। कोई ठोस होते हैं और कोई पोले।

तने का ऊपरी भाग बक्कल कहलाता है। इसे तने से अलग किया जा सकता है। इस छाल से तने के भीतरी भाग की रक्षा होती है। मुख्य तने से जो इधर-उधर शाखें फैल जाती हैं, वे डालियाँ कहलाती हैं। इन्हीं में पत्तियाँ लगी रहती हैं।

आदर्श पौधा वही है, जो तने के सहारे सीधा खड़ा रहता है। ऐसे पौधे को सीधा पौधा कहते हैं। जैसे गेहूँ, बाजरा, गन्ना आदि। जिस पौधे का तना सीधा नहीं खड़ा हो सकता, उसे कमज़ोर तनेवाला पौधा कहते हैं। कुछ पौधे इतने कमज़ोर तनेवाले होते हैं, जो किसी से लिपटकर ही ऊपर उठते हैं। ऐसे पौधे बेल कहलाते हैं। सेम, लौकी, तुरई ऐसी ही बेले हैं।

ऐसी बेलों में पतली सूत की तरह की एक वस्तु होती है, जो उनके लिये हाथ का काम देती है। क्योंकि इन्हीं सूतों से सहारे की चीज़ पकड़कर बेल ऊपर चढ़ती है। यह सूत भी तने का ही एक अंग है। कुछ पौधों के तने ज़मीन पर फैल जाते हैं। जैसे दूब। इन पर छोटी-छोटी पत्तियाँ होती और कली भी आ जाती हैं।

इसी प्रकार कुछ पौधे जड़के समान फैलते हैं। जैसे पोदीना। इनके सिवा कुछ पौधे ऐसे होते हैं, जो ज़मीन के भीतर ही बढ़ते और फैलते हैं। इनकी कई क़िस्में होती हैं—

(१) मोटा, लंबा, भूमि के भीतर फैलनेवाला तना। जैसे अदरक। इस पर सूक्ष्म पत्तियाँ और कलियाँ भी होती हैं। यह भीतर-ही-भीतर बढ़ता जाता है। जब इसकी शाख बाहर निकल आती है, तब हरी हो जाती है।

(२) कुछ तने गठे हुए, फूले हुए और गूदेदार होते हैं। इन पर बड़ी-बड़ी पत्तियाँ भी होती हैं, जो बाहर निकली रहती हैं। जैसे अरवी।

(३) तीसरी तरह के तने सिकुड़े हुए, छोटे प्याले के समान होते हैं। जैसे प्याज़।

(४) कुछ तने भूमि में ही फूल जाते हैं। जैसे आलू। इन पर सूक्ष्म पत्तियाँ, कलियाँ और कलियों में आँखें होती हैं।

इनके सिवा अंगूर आदि ऐसे भी पौधे होते हैं, जिनका एक अंग दूसरे भाग का भी काम देता है। रेगिस्तान में पैदा होनेवाले कुछ पौधों में पत्तो ही नहीं होती। तरबूज़ इसी प्रकार का पौधा है, जो रेत के भीतर ही बढ़ता रहता है।

कुछ पौधो के तनों में पोर भी होते हैं, जिनमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं। जैसे गन्ना, बाँस आदि।

पत्ती

पौधे पर जो भाग पतला, चपटा और डंठल से लगा होता है, उसे पत्ती कहते हैं। यह पौधे का खास अंग है। इसी के सहारे पौधा बढ़ता और जीवन धारण करता है।

पत्तियों के मुख्य काम ४ हैं—

(१) सूर्य के प्रकाश में आहार को पचाती हैं। जड़ों से जो खाद्य पदार्थ तना द्वारा पत्तियों में आता है, वह वहीं हजम होता है।

(२) पत्तियाँ वायु-मंडल से कार्बन एकत्र करती हैं, जो भोजन पचाने के लिये आवश्यक है।

(३) पत्तियों द्वारा वृक्ष और पौधे की श्वास का आवागमन होता है, जिससे पौधा जीवन धारण करता है।

(४) पत्तियों द्वारा अधिक एकत्र हुआ जल बाहर फेंक दिया जाता है, जिससे पौधा स्वस्थ रहता है।

आदर्श पत्ती के मुख्य ३ भाग होते हैं—

(१) पतला, चपटा और बड़ा भाग फार कहलाता है।

(२) पत्ते का डंठल।

(३) डंठल के नीचे का कुछ मोटा और चौड़ा भाग।

फार में नसें होती हैं। इन्हीं से पत्ती भोजन प्राप्त करती और तने में भेज देती है। ये ही नसें पत्ती को फैलाए भी रहती हैं।

पत्तियों में नसें दो प्रकार की होती हैं—(१) जालनुमा, (२) समानांतर। पत्ते के बीच में एक मोटी नस होती है, जो डंठल से पत्ते के सिरे तक जाती है।

• फार का हाशिया किसी का कँटवा, किसी का सादा होता है। पत्तियाँ छोटी-बड़ी आदि भेद से अनेक प्रकार की होती हैं। किसी का डंठल गोल होता है, किसी के बीच में नाली-सी होती है। पत्तियों में बहुत छोटे-छोटे छेद होते हैं, जिनके द्वारा वे साँस लेती हैं। इन छेदों की बनावट ऐसी होती है कि निरीक्षक कोष्ठ इनकी रक्षा करते और आवश्यकतानुसार खुलते और बंद होते रहते हैं।

पत्तियाँ ४ प्रकार की होती हैं—

(१) बीज-पत्ती, (२) पाताली पत्ती, (३) आदर्श हरी पत्ती, (४) फूल-पत्ती।

बीज-पत्ती—कुछ पौधों में बीज के दोनो दाल भूमि से बाहर निकल आते हैं। वे मोटे गूदेदार और हरे रंग के होते हैं।

पाताली पत्ती—प्रायः भूमि पर रहनेवाले तनों पर होती है। जैसे अदरक, आलू आदि में। वह बहुत छोटी, पतली और भूरे रंग की झिल्लीदार होती है। इसका मुख्य काम कलियों को सुरक्षित रखना है।

आदर्श हरी पत्ती—यह पौधे को आहार देती है।

फूल-पत्ती—फूल की पंखड़ियों को कहते हैं।

फूल

फूल पौधे का सबसे महत्त्व-पूर्ण भाग है। पौधे का उद्देश्य

बीज पैदा करना है, जो फूल से ही बनता है। फूल अनेक तरह के होते हैं।

कली कुछ पौधों में पत्ती के डंठल और तने के मेल तथा कुक्षिकोण पर कली निकल आती है। जिन पौधों में पाँचों अंगों का समावेश पाया जाता है, उनमें कलियाँ अवश्य होती हैं।

कुछ पौधों में एक ही स्थान पर अनेक कलियाँ होती हैं। कुछ पौधों में कुक्षिकोण पर कली न होकर तने पर ही इधर-उधर लगी रहती हैं।

बढ़ती हुई शाखा के सिरे पर भी फूला हुआ भाग कली कहलाता है। तब जक फूल अच्छी तरह नहीं खिलता, तभी तक वह कली कहलाता है, खिलने पर उसे फूल कहने लगते हैं।

आदर्श फूल के ४ हिस्से होते हैं—

(१) पंखड़ी, (२) खोल-पत्ती, (३) पराग-केसर की तीली, (४) गर्भकेसर की नली।

पंखड़ी—फूल का सबसे सुंदर भाग है। वह चमकदार और खोल-पत्ती के ऊपर रहता है। इसका काम कीड़ों को अपनी ओर आकर्षण तथा फूल के आवश्यक अंगों की रक्षा करना है।

खोल-पत्ती—यह फूल में पंखड़ी के नीचे रहती है। प्रायः हरी होती है। जब फूल कली की अवस्था में होता है, तब इसी से रक्षा होती है।

पराग-केसर की तीली—फूल का पुलिंग भाग है, जो पंखड़ियों के समीप फूल के भीतर होता है। इसके ३ भाग होते हैं—(१) डंडी, (२) डंडी के ऊपर को घुंडा और (३) इन दोनों का जोड़।

इसके भीतर छोटे-छोटे कण होते हैं। इसी से गर्भ-केसर में गर्भाधान होता है। यह तीली किसी फूल में जुड़वाँ, किसी में अलग तथा किसी में पंखड़ी के ऊपर होती है।

गर्भ-केसर की नली—यह फूल का स्त्रीलिंग भाग है। यह फूल के मध्य में होता है। इसके भी ३ भाग हैं—(१) छत्र, (२) नली और (३) गर्भाशय।

नली पोली होती है। इसी में पराग-केसर गिरकर गर्भ बनता है। छत्र गर्भ-केसर नली के ऊपरी सिरे का भाग है। यह खुर्दरा और चिपकदार होता है, जिस पर पराग गिरने से चिपक जाता है। कोई छत्र रोएँदार होता है, कोई घुंडी-दार। नली पोली होती है, जिसमें होकर पराग भीतर चला जाता है। नली के नीचे बीज-कोष या गर्भाशय होता है। यहीं आकर बीज बनता और पकता है।

बीज या फल

बीज सुषुप्ति अवस्था में रहनेवाला पौधा है, जो उचित अवसर पर माता-पिता के समान बन जाता है। बीज की रक्षा के लिये उसके ऊपर झिल्ली होती है। इसमें दो दालें

होती हैं। किसी-किसी में एक ही होती है । दाल के भीतर एक पतली वस्तु होती है। इसी में एक नुकीला और एक चपटा भाग होता है। यही दोनो बीजों की शक्ति है। इन्हीं से पौधा बनता है।

अंकुर फूटने पर नुकीला भाग नीचे जाकर जड़ बन जाता है, और चपटा भाग भूमि से बाहर आकर तना, पत्ती, फूल आदि बनाता है ।

पौधे की विशेषताएँ तथा अन्य आवश्यक बातें

ऊपर वर्णन कर आए हैं कि पौधे के पाँच भाग होते हैं—जड़, तना, पत्ती, फूल और फल। इनमें कुछ विशेषताएँ होती हैं। संसार के सभी पदार्थ जड़ और चेतन दो भागों में विभाजित हैं। इनमें वृक्ष और पौधे की संज्ञा चेतन रूप में होती है। सर जगदीशचंद्र वसु महोदय ने यह सिद्ध कर दिया है कि वृक्षों में वैसा ही जीवन है, जैसा मनुष्य या पशुओं में पाया जाता है। ये भी भोजन करते हैं, वायु-सेवन करते हैं, सोते और क्रोध तथा अपनी रक्षा का प्रयत्न भी करते हैं। अतः ये चैतन्य श्रेणी में ही कहे जा सकते हैं। और, पत्थर आदि जड़ वस्तुओं से इनका रहन-सहन भिन्न रहता है।

यों साधारणतया प्रत्येक वृक्ष में उक्त पाँचों भाग पाए जाते हैं। परंतु ऐसे भी बहुत-से पौधे हैं, जिनमें ४, ३, २ या केवल एक ही अंग रहता है। गूलर में फूल नहीं होता, शेष चार भाग इसमें पाए जाते हैं।

पाम और फ़र्न वृक्षों में जड़, तना और पत्ती तो होती है, परंतु फूल-फल कुछ नहीं होते।

इसी प्रकार कई ऐसे पौधे हैं, जिनमें तना और पत्तियाँ

तो पाई जाती हैं, परंतु जड़ निमित्त-मात्र ही है। इनसे भी भिन्न फफूँदा पौधे की क़िस्म में माना जाता है। परंतु उसमें सिवा तने के और कुछ नहीं होता। वैज्ञानिकों का इस विषय में यही विचार है।

खेती के उपयोग में इनमें से दो ही प्रकार के पौधे रहते हैं, या तो पाँचों भागवाले गेहूँ, चना, जौ आदि, जिन्हें मनुष्य अपने काम में लाता है, अथवा रतुआ, लाल आदि पौधे के रोग के रूप में, जो फफूँदा के समान पौधे या वृक्ष में उत्पन्न हो जाते हैं, जिनसे पौधे की रक्षा करना आवश्यक होता है। नहीं तो ये सारी फ़सल को ही नष्ट कर देते हैं।

अनाज के दानों को ध्यान-पूर्वक देखने और उपयोग करने से स्पष्ट हो जाता है कि इनमें कुछ अन्न एक दालवाले होते हैं और कुछ दो दालवाले। गेहूँ, जौ, ज्वार, बाजरा आदि अनाज एक दालवाले होते हैं, और चना, मटर, अरहर, उर्द, मूँग दो दालवाले।

इसी प्रकार आयु-भेद से भी पौधे की तीन क़िस्में होती हैं—कोई प्रतिवर्ष अपना चोला बदल डालते हैं, और एक ही वर्ष में पौधा सूखकर गिर जाता है। जैसे गेहूँ, ज्वार, चना आदि। ये पौधे एक ही ऋतु में बीज से उगते, बढ़ते, फूलते, फलते और मर जाते हैं। कुछ पौधे ऐसे होते हैं, जो दो वर्ष तक फ़सल देते रहते हैं। जैसे मूली, गाजर आदि। इनके

सिवा वृक्ष कहलानेवाले आम आदि सदाबहार कहलाते हैं। इनमें प्रतिवर्ष फूल-फल आते रहते हैं।

जड़ों की विशेषताएँ भी अनेक हैं। इनमें प्रत्येक जड़ के सिरे पर एक प्रकार का आवरण होता है, जिसे जड़ की टोपी (Root Cap) कहते हैं। यह टोपी जड़ के अग्रिम भाग की रक्षा करती है, और उसे भूमि में प्रवेश करते समय टूटने से बचाती है। जड़ और उसकी नई शाखाओं में छोटे-छोटे रेशे या मूल-तंतु होते हैं। ये नई जड़ों में अधिक पाए जाते हैं। इनका काम भूमि के कणों से शोषण-शक्ति द्वारा पानी और भोज्य सामग्री को खींचना रहता है।

कुछ मूसला जड़ें खूब मोटी होती हैं, जिन्हें पेटिया कहते हैं। इनकी तीन क़िस्में होती हैं—(१) नेपी फ़ार्म जैसे शलजम, (२) फ़नूसी फ़ार्म जैसे विलायती मूली और (३) कोनीकल जैसे गाजर और देसी मूली आदि।

अंग-वृद्धि—किसी-किसी पौधे में पत्तियों के निचले भाग के समीप पत्तियों के समान (अंग-वृद्धि) भाग रहता है, इसे इस्टीप्यूट कहते हैं।

पौधों में पाए जानेवाले तत्त्व

पौधे के सूखे १०० भाग में ४० भाग कार्बन, शेष ६० भाग में नाइट्रोजन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन होता है। जलने पर २ भाग राख बचती है, जिसमें फ़ास्फ़ोरस, गंधक, पुटाश,

मैग्नेशिया, लोहा, कैलशियम (चूना) होता है। इस प्रकार १० पदार्थ हैं, जिनकी पौधों को आवश्यकता होती है—

(१) कार्बन, (२) हाइड्रोजन, (३) नाइट्रोजन, (४) ऑक्सीजन, (५) फ़ास्फ़ोरस, (६) गंधक, (७) चूना, (८) पुटाश, (९) मैग्नेशिया और (१०) लोहा।

आगे दो चार्ट दिए जाते हैं, जिनमें फ़सलों के उक्त अंशों का विवेचन किया गया है—

नाम फ़सल	पैदावार बुशल	नाइट्रोजन	पुटाश	कैलशियम	मैगनेशिया	गंधक	फ़ास्फ़ोरस
मक्की	१००	७८	२३	१	१०	२१	३३
जई	१००	५८	१६	५	६	१६	२६
गेहूँ	५०	५०	१६	२	७	१५	२६
गेहूँ का भूसा	२·५ टन	४४	१०३	३१	७	२२	११
सेब	४००	१०	३४	१	२	४	३
आलू	,,	७७	७८	२	२	१५	२६
प्याज़	,,	६३	५३	११	७	४६	२३
गोभी	१० टन	३८	४२	११	५	३२	८

एक दूसरे विज्ञानवेत्ता के अनुसार फ़सलों में तत्त्वों का संबंध दिया जाता है—

नाम फ़सल	पैदावार पौंड	राख	फ़ास्फ़ोरस	गंधक	क्लोरीन	चूना	मैग्नेशिया	पुटाश या सोडा	सिलीका
आलू	२८२८	११३	१३	८	३	२	६	५८	६
गेहूँ	२१०४	५०	२४	०	०	१	८	१५	०
गेहूँ का भूसा	५११६	३५८	११	४	२	३०	१८	३४	२४२
रिजका	३६९३	२८४	१८	७	७	७०	१८	७७	१५
जई	९७५	३९	६	०	०	१	३	५	२०
जई का भूसा	१११६	६०	२	३	३	५	२	१७	२४
शलजम	६५६	५०	३	५	१	५	२	१९	३

फ़सल की हानिकारक बीमारियाँ और कीड़े

किसान को चाहिए कि फ़सल को ऐसे ढंग से तैयार करे कि उसमें किसी प्रकार का रोग न होने पावे। भूमि, खाद, बीज अच्छा हो, ऋतु तथा वर्षा के अनुकूल हो, और कृषि-प्रणाली निर्दोष हो, तो फ़सल अच्छी तैयार होती है, और कोई रोग नहीं होता। परंतु इनमें से किसी में विकृति आ जाने पर पौधों को रोग घेर लेता है। अतः उन रोगों का निदान जानकर दवा करने से फ़सल को हानि नहीं होने पाती, इसलिये यहाँ फ़सल की कुछ बीमारियों और उनके उपायों की चर्चा करना उचित प्रतीत होता है। पौधों में चार प्रकार के कीड़े पाए जाते हैं, जो फ़सल को हानि पहुँचाते हैं—

(१) वे कीड़े हैं, जो पत्तियों को झाँझर कर देते हैं। इनसे बचने के लिये सूखा चूना, तंबाकू की राख या मामूली राख पत्तियों पर छिड़क देनी चाहिए।

(२) वे कीड़े, जो पौधे के ऊपर से छेद कर रस चूस लेते हैं। पाही और माहू आदि कीड़ों को मारने के लिये तंबाकू का पानी या मिट्टी के तेल का अर्क़ डालना चाहिए।

(३) जो कीड़े पत्तियों, तनों और शाखों को झाँझर

कर देते हैं, उन्हें मारने के लिये चूने का पानी लाभ-दायक है।

(५) वे बीमारियाँ, जो ज़मीन के कीड़ों से होती हैं। उनकी सबसे अच्छी दवा यह है कि खेत गोड़ दिया जाय, और जिंसों का फेर-बदलकर बोने से इन कीड़ों का प्रभाव दूर हो जाता है।

इन कीड़ों के लगते ही तुरंत दवा कर देनी चाहिए। सबसे अच्छी दवा यह है कि कीड़ों और अंडों को निकालकर फेंक देना चाहिए। और, ख़ूब जुताई कर देना भी इनकी अच्छी दवा है।

टीन का पीपा तला खोलकर ऊपर रक्खा जाय। रात को रोशनी कर दी जाय तथा उसके नीचे बड़े बरतन में मिट्टी का तेल और पानी मिलाकर रख दिया जाय, तो कीड़े मर जाते हैं।

माहू या मुलायम चमड़ेवाले कीड़े तंबाकू का पानी और राख ओस के समय छिड़कने से मर जाते हैं। चूने की राख भी उपयोगी दवा है। यह ध्यान रहे कि यह राख फूल पर न पड़ने पावे, नहीं तो फल नहीं लगेगा। मिट्टी के तेल का अर्क़ भी अच्छी दवा है।

दीमक भी फ़सल का बड़ा भारी शत्रु है। इनका जीवन बहुत रहस्यमय है। ये झुंड बनाकर रहती हैं। इस झुंड में एक मादा होती है। इसे रानी कहते हैं। वह बहुत-से अंडे

देती और एक ही स्थान पर बैठी रहती है। यह ३ वर्ष तक अंडे देती रहती है। अंडों से जो कीड़े निकलते हैं, वे मजदूर या सैनिक होते हैं। ये बहुधा बरसात में निकलते हैं। इनके नगर को खोदकर रानी को मार डालना चाहिए, और नगर में विषैली वायु भर दी जाय, जिससे सब-के-सब कीड़े मर जायँ। यह फ़सल को बहुत हानि पहुँचाती है।

पोटेटो ऑफ़् माउथ—आलू का रोग है। यह कीड़ा खेत को भी हानि पहुँचाता है। गोदाम में इस रोग से बड़ी हानि होती है। यह आलू को काटकर उसमें भीतर प्रवेश कर जाता है, जिससे बाद में आलू सड़ जाता है।

भद्रकीट—यह तितली की जाति का कीड़ा होता है।

बालकीट—सफ़ेद रंग और काले मुँह का, जौ के बराबर लंबा कीड़ा होता है। इससे आलू १०-१५ दिन तक गंदा ही रहता है।

खेती के औज़ार

जिस प्रकार लिखने के लिये क़लम और चित्रकारी के लिये ब्रुश होना आवश्यक है, उसी प्रकार खेती के लिये यंत्रों की आवश्यकता पड़ती है। यंत्रों के विना खेती उसी प्रकार है, जिस प्रकार विना हाथ के आदमी का काम करना। हमारे देश में किसान जिन यंत्रों को काम में लाते हैं, वे बहुत प्राचीन काल से चले आ रहे हैं, और बहुत थोड़ा काम कर पाते हैं। अब विज्ञान का युग है। सारे काम मशीनों द्वारा हो रहे हैं। खेती के लिये भी तरह-तरह के उपयोगी यंत्रों का आविष्कार हुआ है, जिनकी सहायता से योरप तथा अमेरिका के किसान हमारे यहाँ से प्रति एकड़ चारगुनी से दसगुनी तक फ़सल पैदा करते हैं। हमारे यहाँ लायलपुर, कानपुर और पूसा की कृषिशालाओं में इन यंत्रों द्वारा काम करके इनकी उपयोगिता की जाँच की गई। जो कुछ फल हुआ, उसकी रिपोर्ट प्रकाशित की गई। कई प्रकार के यंत्र साधारण किसानों के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। कुछ का वर्णन नीचे दिया जाता है—

हल

हल खेती के लिये सबसे उपयोगी यंत्र है, जिसका प्रयोग अनादि काल से हो रहा है। इसकी सहायता से

मिट्टी जोतकर उलट दी जाती है। पुराने हल मिट्टी बहुत कम उलट पाते हैं। उनमें एक लंबी नोक का फाल और उसके ऊपर एक टेंडुआ होता है, जो लकड़ी का बना होता है। फाल और टेंडुआ दोनो एक दूसरे से चिपके रहते हैं, और फाल के साथ कुछ टेंडुआ भी मिट्टी में घुसता चलता है। इस प्रकार के देसी हल केवल ज़मीन में गढ़ा-सा करते हुए आगे बढ़ते हैं, और उनसे तीन जुताइयाँ कर देने पर भी घास जड़ से नष्ट नहीं हो पाती। अतएव अमेरिका आदि देशों में सैकड़ों नवीन प्रकार के हलों का आविष्कार हुआ है, जो ज़मीन को फाड़कर दोनो ओर उलट देते हैं। उनसे एक बार की जुताई से ही खेत की सारी घास जड़-सहित नष्ट हो जाती है। भिन्न-भिन्न कामों के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के हल काम में लाए जाते हैं। निम्न-लिखित हल बहुत उपयोगी हैं

मेस्टन-हल—साधारण हलों में मेस्टन-हल सर्वश्रेष्ठ है। इससे सब प्रकार का काम किया जा सकता है। इसका मूल्य कम, वज़न हल्का और कार्य उत्तम होता है। इससे प्रायः ५ इंच तक गहरा और ७ इंच तक चौड़ा कूँड़ बन सकता है। इसका वज़न केवल १७-१८ सेर होता है, और बैलों पर लगभग १½ हंडरवेट का खिंचाव पड़ता है। अतएव इसको साधारण बैल भी आसानी से चला सकते हैं। इस हल से हम मटियार, दूमट और बलुई, सब प्रकार की भूमि जोत सकते हैं। मटियार में पहली बार हल्का जोत लगाना चाहिए, फिर दूसरी जुताई

गहरी हो सकेगी। इसके पुरज़े भी साधारण होते हैं, जिनकी मरम्मत गाँव का लोहार आसानी से कर सकता है। इसके निम्न-लिखित भाग होते हैं—

(१) फाल की नोक—जो आगे नुकीली होती है, जिससे भूमि खुदती है।

(२) मोल्डबोर्ड—जो लोहे का मुड़ा हुआ मज़बूत भाग होता है, जिसकी सहायता से मिट्टी पलटती है।

(३) बाडी अर्थात् हल का वह भाग, जिसमें सारे पुरज़े पेंचों से कस दिए जाते हैं।

(४) हैंडिल या मुठिया—जिसको पकड़कर हल चलाते हैं।

(५) Beane या हरीस—लकड़ी की लंबी शहतीर, जिसमें आगे बैलों की जोड़ी जुए में बाँधकर जोतते हैं। यह भारतवर्ष में भी बनता है, जिसका मूल्य ५) है, और विदेशी हल का ६) है।

मँहगी के दिनों में औज़ारों का मूल्य बढ़ सकता है। यह दाम हल की साधारण दर से है, जिसको गवर्नमेंट के कृषि-विभाग ने नियत किया था।

इन यंत्रों को काम में लाते समय इस बात का ध्यान रहे कि पुरज़े कसे रहें, और फाल काम ठीक करता रहे। मेस्टन-हल तथा अन्य आविष्कृत हलों से जुताई करने से भूमि की नमी

मानसून-हल—इसके सब भाग मेस्टन-हल के समान होते हैं। पर यह जंजीर से बाँधा जाता है, क्योंकि यह वाट्स-हल से भी भारी होता है। इसका फाल और मोल्डबोड दोनो काफ़ी भारी होते हैं। यह हल वास्तव में उन किसानों के लिये बनाया गया है, जिनकी खेती मटि-यार भूमि में है। मटियार-ऐसी कड़ी मिट्टी को यह बड़ी आसानी से तोड़ देता है। गन्ने के खेत में इसकी जुताई करनी चाहिए। इससे नीचे तक भूमि पोली हो जाती है। यह ६ इंच गहरा और ६ इंच चौड़ा कूँड़ बना सकता है। पर पहली और दूसरी जुताइयों में इसे पूरा न लगाना चाहिए, नहीं तो साधारण बैल खींच ही न पावेंगे। इसका वजन २४ सेर और खिंचाव ३ हंडरवेट तक पहुँच जाता है। इसका मूल्य २२) है।

इसकी एक दूसरी क़िस्म होती है, जिसका मोल्डबोर्ड बजाय बाएँ हाथ के दाहने हाथ की ओर होता है, और उसी ओर मिट्टी फेकता है। इसको जाट हल कहते हैं।

पंजाब-हल—यह ८ इंच गहरा और १० इंच चौड़ा कूँड़ बनाता है। इस हल में प्रायः सब भाग मेस्टन के समान होते हैं, केवल तीन-चार पुरज़े अधिक होते हैं। एक पहिया, जिससे कूँड़ की गई है, उसे भूमि आवश्यकतानुसार कम या अधिक कर सकते हैं। दूसरा हेक होता है, जिससे कूँड़ की चौड़ाई कम या अधिक कर सकते हैं। इसमें एक के

स्थान पर दो मुठियाँ पकड़ने के लिये होती हैं, जिनको एक मनुष्य दोनो हाथों से मज़बूती के साथ पकड़ता है, और एक लड़का या मनुष्य बैलों को हाँकता है। यह हल मानसून-हल से भारी होता है। यह उन किसानों के लिये बड़े महत्त्व का है, जिनके पास अधिक खेती होती है। इसका मूल्य ४०) है।

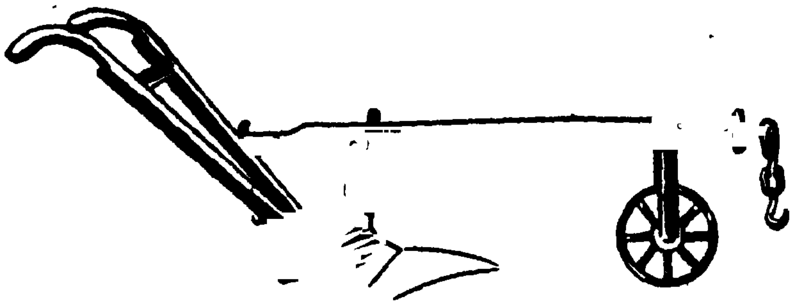

पंजाब-हल

पत्थर-तोड़ हल—यह हल वास्तव में पत्थरतोड़ ही होता है। सूखी, पथरीली, कँकरीली भूमि तथा ऊसर, सबको आसानी से तोड़ देता है। इसमें भी पंजाब-हल की भाँति दो आदमी लगते हैं, और भाग भी पंजाब-हल से मिलते-जुलते हैं। इसका वज़न १ मन २५ सेर होता है, और कूँड़ ६ इंच तक गहरा और ६ इंच तक चौड़ा बनाता है। इसका फाल अन्य हलों की भाँति अधिक नुकीला होता है, और मोल्डबोर्ड छोटा होता है। इसके कारण यह कड़ी मिट्टी में आसानी से घुस जाता है। बाग़ कटवाने के बाद उसकी भूमि

की पहलेपहल इससे जुताई की जाय, तो खर्च की काफ़ी बचत होती है, क्योंकि लोग उसे मजदूरों से खुदवाते हैं, जो कुदाल से खोदते और बहुत थोड़ा काम कर पाते हैं। इसका मूल्य ८०) है।

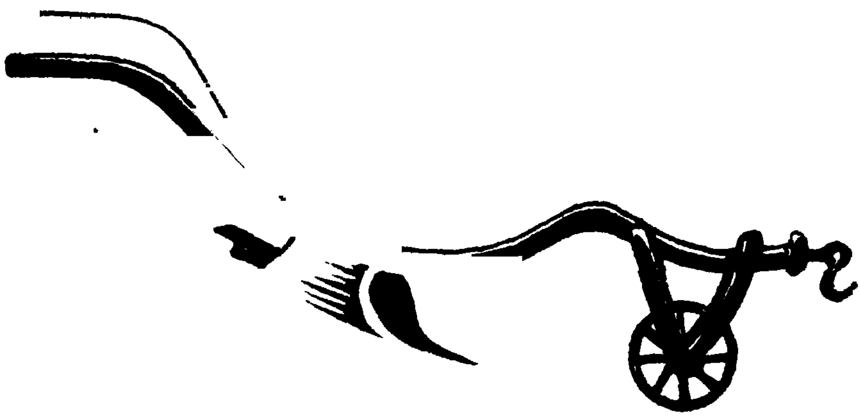

पत्थरतोड़-हल

विक्टरी-हल—यह पंजाब-हल से अच्छा काम करता है और मजबूत भी अधिक होता है। मटियार भूमि में यह ख़ूब काम करता है। वास्तव में यह मटियार भूमि के लिये ही बनाया गया है। भूमि को जोतते समय बड़े-बड़े ढेले पड़ जाया करते हैं। उन ढेलों को तोड़ने के लिये एक चाक़ू भी इस हल में लगा होता है। इसके अन्य पुरज़े पंजाब-हल के समान ही होते हैं। इसका मूल्य ४०) है।

कुछ हल ऐसे आविष्कार किए गए हैं, जो देसी हल के ही उन्नत रूप हैं। उनको देसी हलों के स्थान पर सरलता से

प्रयोग कर सकते हैं। ये हल कम मूल्य के और मजबूत बनाए गए हैं। इनको साधारण किसान अपने मामूली बैलों से भली भाँति जोत सकता है। उनमें से मुख्य ये हैं—

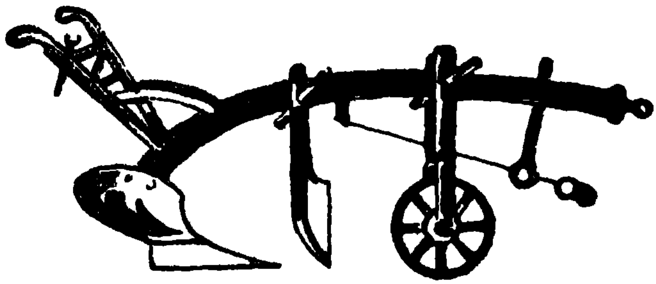

विक्टी-हल

(१) गुरुदत्त-हल—इससे जुती हुई भूमि प्रत्येक स्थान पर बराबर ही रहती है। इससे ५-६ इंच गहरा कूँड़ बना सकते हैं, और घास-पतवार आदि एक तरफ़ हो जाती है इसकी सहायता से हम बीज आसानी से बो सकते हैं, और गहराई हमेशा एक समान रहती है। यह साधारण हलों में बहुत उपयोगी होता है। इसका मूल्य ३॥) है।

(२) गूजर-हल—गुरुदत्त-हल की भाँति यह भी साधारण हल है, पर बहुत उपयोगी है। इसकी आकृति मेस्टन-हल से बहुत मिलती है, पर इसका वज़न सबसे कम है, और खिंचाव भी कम होता है। इससे हम आसानी से ६ इंच गहरा कूँड़ बना सकते हैं। इसका मूल्य ५॥।) है।

हैरो—हलों के बाद हैरो-नामक यंत्र का नंबर आता है। इसकी सहायता से खेत की घास उखाड़ी जाती है, और

जो घास-पतवार सूखा हुआ (भौंरी) खेत में होती है, उसको यह इकट्ठा कर देता है। अधिक गीले खेत में, जहाँ हल नहीं चलाया जा सकता, इसको बेखटके चला सकते हैं। यदि खेत में पानी भरा हो और हैरो चला दें, तो पृथ्वी खूब पानी पी लेती है, और उसमें पर्याप्त नमी आ जाती है। खेत सूख भी जल्दी जाता है। उस समय हल की जुताई बड़ी आसान हो जाती है। ये खड़ी फ़सल में भी चलाए जाते हैं। खेत खूब पोला हो जाता है, पर पौधों को कोई हानि नहीं पहुँचती। मुख्य हैरो ये हैं—

(१) मदरासी हैरो—इसमें तीन लाइन के चौकोर फ्रेम में कीले गड़े होते हैं। इसमें एक ऐसी कल लगी रहती है, जिसे

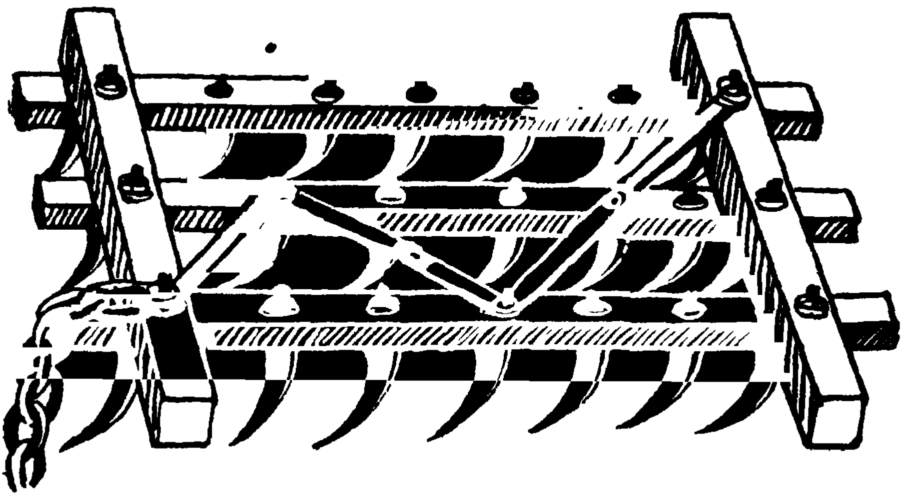

मदरासी हैरो

घुमाने से इसे आवश्यकतानुसार कम या अधिक चौड़ा कर सकते हैं। काँटों को अधिक चौड़ा करके चलाने

से घास जमा होती है, और कम चौड़ा करने से पपड़ी टूटती है।

(२) तिकोना हैरो—इसको पपड़ी तोड़ने के काम में लाते हैं, पर इसमें काँटों को घटाने-बढ़ाने की व्यवस्था नहीं है। इसे हरएक स्थान पर बना सकते हैं, क्योंकि यह बहुत ही साधारण होता है। एक तिकोनी आकृति का लकड़ी का फ्रेम बना लेना चाहिए। उसमें कीले इस प्रकार जड़ देना चाहिए, जिससे कीले एक दूसरे के ऊपर न पड़ें। इसको जब पौधे छोटे हों, तभी चलाना चाहिए। साधारण किसानों के लिये, जिनके पास खेती थोड़ी हो, यह बड़े काम की चीज़ है। इसका मूल्य १५) है।

(३) लीवर हैरो—यह सबसे अच्छा और अधिक काम करनेवाला होता है। इसके काँटों को कम तथा अधिक किया जा सकता है। इससे खेत की पपड़ी बिलकुल टूट जाती है, और खेत ऐसा प्रतीत होता है, मानो हल से जोत दिया गया हो। इसको भी खड़ी फ़सल के खेतों में चलाया जा सकता है। इससे तिकोने हैरो की अपेक्षा तिगुना काम लिया जा सकता है। जब खेत में पानी भरा हो या गीला हो, इसको चला दिया जाय, तो खेत बहुत जल्द सूखकर जोतने योग्य हो जाता है। मूल्य ४५) है।

(४) कमानीदार हैरो—देसी हल की अपेक्षा यह पाँचगुना अधिक काम करता है। यह उस समय बहुत काम करता है,

जब अधिक या बाद में वर्षा होती है, जब देसी हल से खेतों को तैयार करने में बड़ी कठिनाई होती है। यह रबी और ख़रीफ़, दोनो फ़सलें तैयार करने में बड़ा काम करता है। ढेलों को तोड़ने में भी यह एक ही है। इसमें स्प्रिंगदार लंबी और मज़बूत लोहे की मुड़ी हुई पत्तियाँ होती हैं, जो दो लाइनों में जड़ी रहती हैं। यह भिन्न-भिन्न आकारवाले ३, ५ और ७ काँटों (कमानियों) का होता है। साधारणतः इसका मूल्य ३५) होता है।

कल्टीवेटर—हैरो के बाद इसका नंबर आता है। पर यह हैरो से अधिक उपयोगी होता है। यह वास्तव में पाँच फलवाला हल ही होता है। और, जुताई करने के बाद

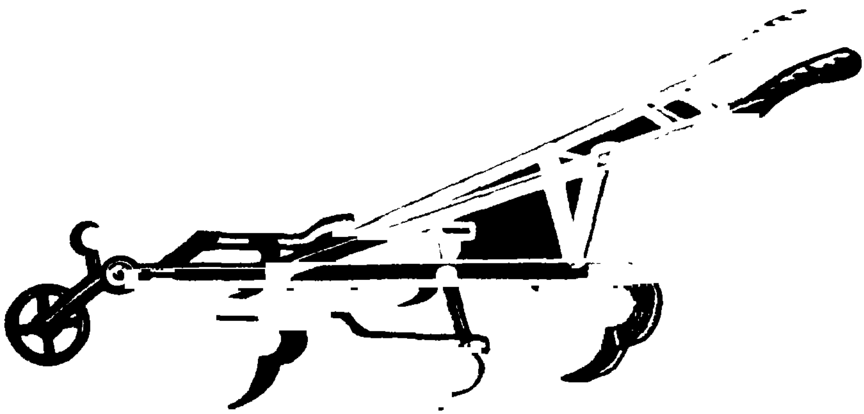

कल्टीवेटर

इससे काम किया जाय, तो ज़मीन बहुत बढ़िया बन जाती है। इससे हल की अपेक्षा पाँचगुना काम ले सकते हैं। यह खड़ी फ़सलों की जुताई और निकाई बड़ी सरलता से कर

देता है। एक जोड़ी बैल और एक आदमी इससे मज़े में काम कर सकता है। गन्ने, आलू तथा अन्य फ़सलों के खेत में इससे मेड़ बना सकते और खुदाई भी कर सकते हैं।

एक बहुत साधारण, पर अति उपयोगी यंत्र होता है, जिसे अकोलाहो कहते हैं। इसमें एक हरीस होती है, जिसमें तीन लोहे के काँटे और एक घास काटने के लिये खुरपी बनी होती है। इससे जुताई और गुड़ाई साथ-साथ हो जाती है। क़तारों में बोई गई फ़सल के लिये यह सर्वोत्तम है।

इनके अतिरिक्त छोटे-छोटे औज़ार काम में लाए जाते हैं, जैसे कुदाली, फावड़ा, खुरपी, हँसिया, पाटा, कुदरा आदि। इन सबका उपयोग प्रत्येक किसान भली भाँति जानता है। इनकी उन्नतिशील आकृतियाँ विदेशों में प्रयोग होती हैं। हमारे यहाँ भी फ़ार्मों में उनका प्रयोग होता है। उन्नतिशील औज़ारों से देसी की अपेक्षा दुगुना काम होता है, और पेंचों द्वारा कसे होने के कारण वे बड़े मज़बूत और तेज़ बने रहते हैं। देसी औज़ारों में, काठ की खपचों द्वारा कसे होने के कारण, उतनी मज़बूती नहीं आती।

मशीनें

बड़े-बड़े खेतों और फ़ार्मों में इतना अधिक काम होता है कि दर्जनों मनुष्य भी पूरा नहीं कर पाते। उस समय मशीनें बहुत काम देती हैं। खेती के लिये उपयोगी सैकड़ों छोटी और बड़ी मशीनें तैयार की गई हैं, जो रूस, अमेरिका आदि

देशों में खेती का सारा काम करती हैं। जुताई से लेकर बीज बोना, निराना, काटना, दाना साफ़ करना, भरना आदि सारे काम मशीनों द्वारा होते हैं। साधारण किसान बड़ी-बड़ी मशीनें नहीं रख सकते। कुछ ऐसी मशीनें अवश्य हैं, जिन्हें साधारण किसान भी उपयोग में लाकर बहुत-सी मजदूरी और परिश्रम बचा सकता है। नीचे कुछ अत्यंत उपयोगी मशीनों का विवरण दिया जाता है—

(१) कुट्टी की मशीन (Chaffcutter)—इससे जानवरों के लिये चारा काटा जाता है। दोपहर तक किसान खेत जोतकर बहुत थक जाते हैं। उसके बाद चारा काटने बठते हैं। दो बैलों के लिये लगभग ३ घंटे लग जाते हैं। इस काम में उन्हें बड़ा परिश्रम होता है। उनके लिये यह मशीन बड़ी उपयोगी है। इससे एक घंटे में हरी करब १० मन और सूखी ५ मन कटती है। इसमें दो आदमी लगते हैं। एक मशीन घुमाता और दूसरा चारा लगाता है। यह मशीन छ आद-मियों के बराबर काम करती है। मूल्य २०) से ४०) तक होता है। इसमें दो गड़ासे चारा काटने के लिये लगे होते हैं, और दोनो खूब भरमुट्ठे चारे को बारी-बारी से काटते हैं।

(२) किवलर—यह छोटी-सी मशीन दाना दलने के काम में लाई जाती है। एक घंटे में क़रीब ३ मन दाना दल देती है। इसका मूल्य ४०) है।

(३) सीड-ड्रिल—यह बीज बोने की मशीन है; इसकी

सहायता से बीजों को एक समान, एक ही गहराई पर, बो सकते हैं। पर इसका मूल्य ३५०) होने के कारण साधारण किसान इसे नहीं ले सकते।

(४) रीपर—अधिक क्षेत्रफल की खेती काटने के लिये बड़ी कठिनाई पड़ती है। यह उन्हीं के लिये बनाई गई है। इससे सात एकड़ गेहूँ की फ़सल एक दिन में काटी जाती है। इसका भी मूल्य ३००) है, इसलिये साधारण किसान नहीं ले सकते।

(५) थे्सर—जब गेहूँ के गट्ठे इकट्ठे हो जाते हैं, तब इसकी सहायता से हम गेहुँओं के गट्ठों को गाहते हैं। यह बैलों द्वारा चलाई जाती है। इसमें गोल पहिए लगे होते हैं, जो गेहूँ के सूखे पौधों पर बार-बार चलते हैं। इससे पौधे कटकर भूसा बन जाता है। इसका मूल्य ४०) होता है।

(६) विनोवर—इससे हवा उत्पन्न हो जाती है, जो भूसे को उड़ाकर गेहुँओं से अलग कर देती है। इसको एक आदमी चलाता और एक सिल्ली डालता है। एक घंटे में २० मन भूसा तथा अनाज साफ़ किया जा सकता है। इससे अनाज बिलकुल साफ़ निकलता है।

जल-वायु

भूमि पर ऋतुओं का प्रभाव अवश्य पड़ता है। जाड़ा, गर्मी, बरसात में धरती की स्थिति भिन्न प्रकार की रहती है। उनका प्रभाव फ़सल पर क्या पड़ता है ? किस ऋतु में कौन-सी फ़सल हो सकती और कौन-सी नहीं हो सकती है ? भूमि में नमी अधिक है या ख़ुश्की ? वायु का क्या प्रभाव फ़सल पर होगा ? पानी में क्या-क्या तत्त्व मिले हुए हैं ? इन बातों का ज्ञान भी किसान के लिये आवश्यक है।

जल-वायु में मुख्य तीन बातें होती हैं—ताप, नमी और वायु, इन्हीं तीनो बातों के कारण फ़सल में भिन्नता रहती है। ऋतुएँ और स्थान-प्रभेद की भिन्नता इन्हीं तीनो बातों पर निर्भर है। इस विज्ञान को ठीक-ठीक समझना बड़ा कठिन है।

नमी—वायु-मंडल में जल-कण के वास से नमी रहती है। वर्षा में यह नमी सबसे अधिक होती है, जाड़े में उससे कम, और गर्मी में सबसे कम। दिन की अपेक्षा रात में नमी अधिक रहती है। हाइग्रोमीटर यंत्र से हम नमी की नाप कर सकते हैं। इसमें दो थर्मामीटर बराबर-बराबर लगे रहते हैं। एक थर्मामीटर के नीचे पानी की कटोरी रहती है,

और थर्मामीटर कपड़े से भीगा रहता है। गर्मी के कारण पानी भाप-रूप में उड़ता है, और जितना उड़ता है, उतनी ही डिग्री पर पारा आ जाता है। इसलिये इसे तरी बतलाने-वाला थर्मामीटर कहते हैं। दूसरे थर्मामीटर के नीचे कुछ नहीं होता। इसे ख़ुश्की बतलानेवाला थर्मामीटर कहते हैं।

इन दोनो थर्मामीटर की डिग्रियों में जो अंतर होता है, उसे निकालकर एक विशेष सारिणी द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि उपर्युक्त डिग्री पर कितने प्रति सैकड़ा नमी है।

थर्मामीटर से हवा में जितनी ख़ुश्की अधिक मालूम होगी, उतना ही अधिक अंतर दोनो में होगा, और नमी कम होगी।

वर्षा नापने का यंत्र—इसे अँगरेज़ी में रेनगेज कहते हैं। इससे मालूम हो जाता है कि कहाँ कितनी वर्षा हुई है, तथा एक दिन में जो वर्षा हुई, वह खेत में कितने पानी के बराबर है।

इसकी बनावट बोतल की तरह होती है, जिसके मुँह पर गोल छेददार प्याला होता है। जब वर्षा होती है, तो बूँदों द्वारा बोतल भरती जाती है, जब वर्षा बंद हो जाती है, तब पानी एक नाप (गिलास) द्वारा नापकर पानी का परिमाण जान लेते हैं। इस गिलास पर इंच के निशान बने होते हैं, उसी के अनुसार इंचों में वर्षा जान ली जाती है।

एक इंच वर्षा एक एकड़ खेत में २२,५१७ गेलन के बराबर होती है। इस यंत्र को सदैव खुले स्थान में रखना चाहिए। किसी प्रकार की छाया यंत्र पर न पड़नी चाहिए।

ओस—जब वायुमंडल में नमी अधिक और ताप-मान कम हो, तो हवा ठंडी होने लगती है। उस समय जल के कण बूँदों के रूप में पत्तों आदि पर दिखलाई देने लगते हैं। इसी को ओस कहते हैं। ओस सदैव रात्रि में गिरा करती है। बादल होने और हवा चलने पर ओस नहीं गिरती। जाड़े के दिनों में ओस अधिक गिरती है। ओस से दो लाभ हैं—

(१) इससे भूमि को कुछ जल मिल जाता है।

(२) ओस की अवस्था में भूमि से पानी उड़ना बंद हो जाता है।

बादल—जल और मिट्टी के कणों के मिश्रण ठंडे होकर जमने के रूप में बादल होते हैं। वे कुहरे की ही भाँति जमते हैं। केवल अंतर यह है कि कुहरा जमीन के पास होता है, और बादल बहुत ऊँचे होते हैं।

जब आकाश के ऊपरी भाग की गरम हवा ठंडी हो जाती है, तब जल के कण ठंडे होकर बादल बन जाते हैं।

बादल ४ प्रकार के होते हैं—स्ट्रेटस, क्यूमलस, सिरस और निंबस। पहले तीन प्रकार के बादलों के मिश्रण से निंबस बादल बनते हैं। स्ट्रेटस पृथ्वी के समीप आकर बनते

हैं। ये कोहरे से मिलते-जुलते हैं, और वर्षा के मध्य में अधिक होते हैं।

क्यूमलस बादल स्वच्छ आकाश में पृथ्वी से बहुत ऊँचे होते हैं। निंबस वर्षा के मध्य में होते हैं। खेती के लिये ही ये अधिक लाभदायक हैं।

सिरस बादल छिदरे हुए आकाश में फैले रहते हैं। ये वर्षा के अंत में होते हैं।

कोहरा—जब वायु-मंडल में ताप-मान ओस-बिंदु से कम रहता है, तब कोहरा पड़ता है। रजकण के चारो ओर जमा होने से ये घने और अंधकारमय हो जाते और धुंध-सी छा देते हैं।

वर्षा—बादल शीत के कारण बूँद के रूप में जुड़ने लगते हैं, और हवा इन्हें नहीं सँभाल पाती, तब पानी बरसता और पृथ्वी की ओर गिर पड़ता है।

पाला—जब फ़ार्नहाइट टेंपरेचर ३° डिग्री से नीचे उतर जाता है, और जल-कण जम जाते हैं, तब पाला कहलाता है। ओस-कण इससे पहले ही बन जाते हैं। ओस खेती के लिये लाभदायक वस्तु है, परंतु पाला फ़सल को बहुत हानि पहुँचाता है। यह शीत-काल में स्वच्छ, निर्मल और शांत वायु-मंडल में पड़ता है। यह पत्तियों पर गिरते समय पत्तियों में स्थित खाद्य-मिश्रित जल को जमा देता है। इससे रस-संचालन-क्रिया बंद हो जाती है, और पत्तियाँ मर जाती हैं। पाले से बचने के दो उपाय हैं—

(१) पाला गिरने से पहले खेत खूब सींच दिया जाय, क्योंकि सींचे खेत पर पाला कम असर करता है।

(२) जब पाले का डर हो, तब खेत के चारो ओर धुआँ कर दिया जाय। अमेरिका में इसी का अधिक प्रयोग होता है।

ओला—बादलों का पानी जमकर ठोस हो जाने पर ओला बन जाता है, वही फ़सल पर गिरकर उसे बरबाद कर देता है। वसंत या ग्रीष्म-ऋतु में यह पानी के साथ बरसा करता है। कभी-कभी जाड़े में भी ओले गिरा करते हैं। ये पौधे को भी हानि पहुँचाते हैं।

वायु—यह अत्यंत महत्त्व-पूर्ण और प्राणियों के लिये उपयोगी वस्तु है। पराग-केसर और गर्भ-केसर को मिलाकर फलोत्पत्ति का कारण होती है। फ़सल भी इसी से तैयार करते हैं। वायु का कोप भी होता है। इसी कारण शरीर पर इसका दबाव भी पड़ता है। जो वस्तु गरम होती है, वह हलकी हो जाती है। इसीलिये वायु दबाव के स्थान से कम दबाव की ओर चला करती है। वायु ३ प्रकार की होती है—

(१) स्थायी हवाएँ—ये समस्त वर्ष एक ही ओर चला करती हैं। इन्हें ट्रेडविंड कहते हैं।

(२) वेरिएबिल हवाएँ—ये स्थायी परिवर्तन के कारण चला करती हैं। जैसी समुद्र के किनारे चलती हैं।

(३) मौसमी हवाएँ—ये ऋतुओं के परिवर्तन के कारण चलती और बड़ी प्रभावशाली होती हैं। जैसे मानसून। यह

भारत के लिये बहुत हितकारी होती है। वर्षा इसी के द्वारा होती है।

वायु नापने के कुछ यंत्र भी बन गए हैं। जैसे एनीमोमीटर से वायु की चाल मालूम हो जाती है। विंडगेज से वायु के दबाव का पता चलता है, और विंडवेव से वायु की दिशा जानी जाती है।

ताप—वायु की तरह यह भी आवश्यक वस्तु है। यह पृथ्वी के भीतरी भाग और सूर्य से मिलती है, तभी हमें गर्मी मालूम होती है। गर्मी के कीटाणु खाद्य वस्तु तैयार करते हैं।

ताप-यंत्र २ प्रकार के होते हैं—(१) सेंटीग्रेड (१०० डिग्री तक नापने का) और (२) फ़ैरनहाइट। एक सेंटीग्रेड $\frac{9}{5}$ फ़ैरनहाइट के समान होता है। सेंटीग्रेड की ०° डिग्री पर तथा फ़ैरनहाइट की ३२° पर पानी जम जाता है। इसे अँगरेज़ी में फ़्रीजिंग प्वाइंट कहते हैं। १००° सेंटीग्रेड या २१२° फ़ैरनहाइट पर पानी उबलकर भाप बन जाता है। इसे 'ब्वायलिंग प्वाइंट' कहते हैं। जनवरी में सबसे अधिक सर्दी और जून के प्रारंभ में सबसे अधिक गर्मी पड़ती है। सर्दी-गर्मी सदैव घटती-बढ़ती रहती है।

ऋतुएँ—तीन होती हैं—(१) जाड़ा, (२) गर्मी और (३) बरसात। (१) १५ ऑक्टोबर से १५ फ़रवरी तक जाड़ा, (२) १५ फ़रवरी से १५ जून तक गर्मी और (३) १५ जून से १५ ऑक्टोबर तक बरसात मानी जाती है।

जाड़े में पूर्वी हवा चलने पर कभी-कभी वर्षा हो जाती है। इसे माहोट कहते हैं।

इन ऋतुओं के विचार से फ़सलें भी तीन प्रकार की होती हैं। वर्षा-ऋतु में ख़रीफ़ की फ़सल होती है। चूँकि यह वर्षा में ही बढ़ती और फलती है, अतः इस फ़सल को ख़रीफ़ कहते हैं। इसका नाम सावनी भी है।

जाड़ों में जो फ़सल बढ़ती और फलती है, उसे रबी कहते हैं। इन दोनो के सिवा कहीं-कहीं तीसरी फ़सल गर्मी में ककड़ी, ख़रबूज़ा आदि की कर लेते हैं। इसे ज़ायद फ़सल कहते हैं। खेती का मुख्य संबंध वर्षा से है। बिना वर्षा के न खेती हो सकती है और न पेड़-पौधे ही पनप सकते हैं। अतः वर्षा पर ही खेती निर्भर है। जहाँ १२ इंच से कम वर्षा होती है और रेत होता है, वहाँ खेती नहीं हो सकती। ऐसे स्थानों में नदी के किनारे कुछ खेती हो जाती है। पर जहाँ १२ इंच से अधिक और १८ इंच से कम वर्षा होती है, वहाँ खेती हो सकती है, पर सिंचाई का प्रबंध करना पड़ता है, नहीं तो ऐसे स्थानों पर चरागाह (जंगल) हो जाते हैं।

जहाँ वर्षा ४० इंच के लगभग या इससे अधिक होती है, वहाँ खेती अच्छी होती है। ९०-१०० इंच से अधिक वर्षावाले स्थानों में घास-पात की बढ़वार के कारण खेती करने में कठिनाई पड़ती है। वर्षा वही अच्छी है, जो कुछ

दिन ठहर-ठहरकर होती रहे। एकदम बरसना अच्छा नहीं। खेती के लिये २५-३० इंच वर्षा पर्याप्त है।

भारत के प्रांतों में वर्षा का औसत—पश्चिमी बंगाल में ६६ इंच, लोअर बंगाल में ९४ इंच, पंजाब में २२ इंच, यू० पी० में ३६ इंच, आसाम में ९४ इंच, मध्य देश में ५१ इंच, हैदराबाद में ३२ इंच, सिंध में ९ इंच।

शहरों में वर्षा का औसत इस प्रकार है—मेरठ में २९ इंच, आगरा में २६ इंच, झाँसी में ३६ इंच, लखनऊ और प्रयाग में ३७ इंच, कानपुर में ३३ इंच, बनारस में ३९ इंच, गोरखपुर में ४४ इंच, देहरादून में ७७ इंच, रुड़की में ४२ इंच, लाहौर में २० इंच, कलकत्ता में ६५ इंच।

मानसून

भारत की वर्षा मानसून पर ही निर्भर है। कुल वर्षा का ५/६ भाग मानसून द्वारा ही बरसता है। जो मानसून अरब-समुद्र से उठता है, वह पश्चिमी घाट से टकराता है, और वहीं पानी का सबसे बड़ा भाग बरस जाता है। यहाँ १०० इंच वर्षा होती है। फिर सतपुड़ा और विंध्याचल के बीच में होकर मानसून आगे बढ़ता है, और इन स्थानों में भी २५ इंच के लगभग वर्षा हो जाती है।

फिर इससे उत्तर की ओर सिंध, राजपूताना और बिलो-चिस्तान में पहाड़ों की कोई रोक न होने से मानसून सीधा आगे बढ़ जाता है, और पंजाब में जाकर अच्छी वर्षा कर

देता है। कराँची और खंबात का मानसून ही उत्तर की ओर बढ़ पाता है।

दूसरा मानसून बंगाल की खाड़ी से उठता है। उसकी एक शाखा बर्मा के पहाड़ों से टकराकर खूब पानी बरसाती है। यही मानसून गारू, खसिया और जयंतिया की पहाड़ियों से टकराकर आसाम में घनघोर वर्षा करता है। इसी कारण चेरापूँजी में संसार-भर से अधिक वर्षा होती है। यहाँ प्रति-वर्ष औसतन ४५० इंच वर्षा होती है। सन् १८६१ ई० में तो ८०५ इंच वर्षा हुई थी।

बंगाल की खाड़ी के मानसून की एक दूसरी शाखा हिमालय और गंगा की घाटी की ओर बढ़ जाती है। यही मानसून सबसे महत्त्व का है। इसी के कारण बंगाल, बिहार, उड़ीसा, युक्त प्रांत और मदरास में अच्छी वर्षा होती है। भारत को उर्वरा बनानेवाला यही मानसून है।

जाड़े का मानसून

सितंबर के बाद उत्तरी भारत और बर्मा में हवा का दबाव अधिक हो जाने के कारण इस ऋतु में वर्षा कम होती है, परंतु मदरास में उत्तरी-पूर्वी मानसून से ही जाड़े में अच्छी वर्षा होती है। मदरास की खेती पर इसी मानसून का अधिक प्रभाव रहता है, और अच्छी फ़सल पैदा करता है।

जाड़े के मौसम में हिमालय की शीत वायु पश्चिमी भारत की नम हवा को ठंडा करके पंजाब और युक्त प्रांत में वर्षा

कर देती है। इससे रबी की फ़सल को अच्छा लाभ होता है। इस प्रकार भारत में वर्षा पर ही खेती निर्भर रहती है। नहरों आदि का अधिक प्रबंध नहीं है। इसे बढ़ाने की आवश्यकता है।

सिंचाई

भारत में सिंचाई के लिये अनेक प्रकार के साधन काम में लाए जाते हैं। वर्षा के ही भरोसे पर बहुत-सी खेती की जाती है। इसके सिवा तालाब, बाँध, नदी, नहर, कुआँ, बावरी आदि से भी फ़सल सींची जाती है। कुएँ आदि से पानी निकालने के लिये ढेंकली, रहँट, चरस और हर प्रकार के पंपों का प्रयोग किया जाता है। सिंचाई की प्रणाली भी कई तरह की है। कहीं ऊपर से जल का छिड़काव करते हैं, कहीं क्यारियों में जल भरकर सिंचाई की जाती है, और कहीं नालियों से पानी ले जाकर खेत सींचते हैं।

निम्न-लिखित बातों की सूचना दे देने पर उचित पंपों और एंजिन का भी प्रबंध किया जा सकता है—

(१) कुएँ की लंबाई, चौड़ाई और गहराई का ब्योरा।

(२) गर्मी में पानी की सतह कितनी नीची चली जाती है।

(३) बरसात में पानी का उभार कितनी ऊँचाई तक होता है।

(४) कुएँ के मुँह से पानी कितना ऊपर फेंकना होगा।

(५) पंप में कितने मोड़ लगाने की आवश्यकता होगी।

(६) यदि एंजिन हो, और पंप मँगवाना हो, तो उसके शक्ति-संचालक पहिए का व्यास कितना होगा, और वह प्रति मिनट कितने चक्कर लगाता है, इसका पूरा विवरण देना चाहिए।

(७) उस पंप को प्रति मिनट कितना पानी फेकना होगा।

ऊपर लिखी बातें जानकर ही पंप बैठाने का प्रयत्न करना चाहिए।

सिंचाई का परिमाण

अधिक पानी सोखनेवाली भूमि में भी ज्यादा पानी न देना चाहिए। अधिक पानी देने से भूमि खराब हो जाती है। कृषकों का अनुभव है कि जब से नहर निकली है, तब से भूमि की पैदावार कम हो गई है। वे नहर को इस पैदावार की कमी का कारण समझते हैं। पर यथार्थ बात यह नहीं है। किसान खेत में नहर का पानी काटकर सो जाते हैं, और खेत ताल के समान भरता रहता है। इससे फ़सल और खेत, दोनो को नुक़सान पहुँचता है। फ़सल की जड़ें पानी से कमजोर पड़ जाती हैं, भूमि का उर्वरापन धीरे-धीरे नष्ट हो जाता और रेह जम जाता है।

पौधों में कितने पानी की आवश्यकता होती है, इसका कोई ख़ास नियम नहीं है। यह निम्न-लिखित बातों पर निर्भर है—

(१) भूमि की भिन्नता, (२) भूमि की स्थिति, (३) फ़सल की भिन्नता, (४) फ़सल की अवस्था, (५) ऋतु की भिन्नता, (६) खाद की उपस्थिति और (७) कृषि-पद्धति।

(१) पानी की सबसे अधिक आवश्यकता भूड़ में पड़ती है। मटियार में सबसे कम पानी चाहिए, और दुमट में मध्यम पानी की आवश्यकता होती है।

(२) सूखी भूमि हो, तो परेह करके बोई जाती है, और सिंचाई में क्रमशः पानी कम होता जाता है। पहली बार की सिंचाई की अपेक्षा दूसरी बार में पानी कम लगता है, और दूसरी बार से तीसरी बार में पानी कम दिया जाता है।

(३) फ़सलों के विचार से भी पानी की कमी-बेशी होती रहती है। गन्ने में सबसे अधिक पानी देना पड़ता है। उससे कम आलू को, और उससे भी कम गेहूँ को।

(४) छोटे पौधों को अधिक पानी चाहिए। बढ़ जाने पर उतने पानी की आवश्यकता नहीं होती।

(५) गर्मी की फ़सल को अधिक पानी देना पड़ता है, जाड़े की खेती को मध्यम और बरसात की पैदावार में कम पानी की ज़रूरत होती है।

(६) खादवाली भूमि में अधिक और बिना खादवाली में कम पानी की आवश्यकता होती है।

(७) गहरी जोत में कम और उथली जोत में अधिक पानी देना चाहिए।

किसानों का अनुभव है कि भूड़ के लिये प्रति एकड़ ७०-८० हज़ार गेलन, दुमट में ६० हज़ार गेलन और मटियार में ४०-५० हज़ार गेलन पानी की आवश्यकता होती है।

एक गेलन पानी वज़न में ५ सेर होता है। ३ इंच पानी से एक बार की अच्छी सिंचाई हो जाती है।

सूखेपन से पौवे का हरापन हटकर पीलापन आ जाता है, और थोड़े दिनों में वह मुरझाकर मर जाता है। पानी द्वारा ही पौधे को भोजन मिलता है। जब पानी न होगा, तो उसे भोजन कैसे मिल सकता है, अतः पौधें को पानी की सबसे अधिक आवश्यकता है।

खेत में नमी रखना—खेत न सूखने पावे, इसलिये खेत की नमी को क़ायम रखने की आवश्यकता होती है। भूमि की नालियों द्वारा भाप सतह पर आकर वायु बन जाती है। यदि इन नालियों के सिरे तोड़ दिए जायँ, या भूमि की सतह पर कुछ बिछा दिया जाय, तो नमी क़ायम रह सकती है। इसके लिये निम्न-लिखित प्रयोग करने चाहिए—

(१) जुते खेत की नमी पटेला देकर क़ायम रक्खी जा सकती है।

(२) नौ इंच तक की खड़ी फ़सल में हेरो व कल्टीवेटर का प्रयोग करना।

(३) निराई और गुड़ाई करनी चाहिए।

कुआँ

कुएँ दो प्रकार के होते हैं—(१) चुआनवाले, और (२) सोतेवाले। चुआनवाले कुओं से पानी रस-रसकर थोड़ा-थोड़ा आता है। इससे इकट्ठा होने पर ही पानी मिल सकता है, पर सोतेवाले से ख़ूब पानी मिलता है।

कुआँ खोदने में भिन्न-भिन्न प्रकार की तहें मिलती हैं—कहीं दुमट, कहीं चिकनी, कहीं बलवार और कहीं कँकरीली। इन्हीं तहों के बीच में होकर पानी बहता है। यह वही पानी है, जो वर्षा में ज़मीन सोखकर इकट्ठा करती रहती है। इन तहों में बलवार तह सबसे अच्छी होती है। इसमें पानी डालने की शक्ति कम होती है।

अधिक पानी के लिये विशेष उद्योग करना पड़ता है, और हमें बैल आदि के द्वारा २००-३०० फ़ीट गहरा ले जाना पड़ता है, और जालीवाला नल भूमि में धँसाते जाते हैं। यह पानी एंजिन, बिजली या मोटर द्वारा निकाला जाता है। ट्यूब वेल अधिक खर्चीला होता है। ऐसे काम के लिये चीफ़ इंजीनियर कृषि-विभाग से पत्र-व्यवहार करना चाहिए।

यदि कहीं ४०-५० फ़ीट गहरे कुएँ हों, तो जहाँ तक अच्छे सोते मिलें, वहाँ तक नल डलवा देना या बोरिंग करा लेना चाहिए।

नदी और नहर—नदी पहाड़ों से आती है, और नहर नदी से निकाली जाती है। नदियाँ प्रायः भूमि से नीची होती

हैं, इसलिये इनसे पानी उठाने के लिये चेन-पंप, ढेंकली आदि का प्रयोग होता है। पर जहाँ पानी कम नीचा होता है, वहाँ बेड़ी से काम लिया जाता है।

चरस या पुर

इस देश में चरस या पुर का प्रयोग अधिक किया जाता है। इसमें समय और व्यय, दोनो अधिक लगते हैं।

यह दो प्रकार का होता है—(१) कीली, और (२) लागोर।

कीली में दो जोड़ी बैल लगते हैं, जो बारी-बारी से चरसा खींचते हैं, और लागौरी में एक जोड़ी बैल लगता है। यदि कुआँ ३० फ़ीट गहरा हो, तो कीली से ½ एकड़ १ घंटे में ७० पुर = १७५० गैलन पानी देकर सींचता है, और लागौरी से एक जोड़ी बैल ⅓ एकड़ प्रति घंटा ५० पुर = १२५० गैलन पानी के हिसाब से एक दिन में साधारणतः सिंचाई करता है। दोनो में तीन-तीन आदमियों की आवश्यकता होती है। दो जोड़ी से पुर खींचना अच्छा है, क्योंकि इससे काम अधिक होता और बैलों को परिश्रम कम करना पड़ता है। पुर ५०-६० फ़ीट से अधिक पर काम नहीं देता। कुआँ जितना कम गहरा होगा, उतना ही पानी अधिक खींचेगा। चरस की नाप बालिश्त से होनी है। ७ से ९ बालिश्त तक के चरस अधिक काम में लाए जाते हैं। सात बालिश्तवाले में ३२ गैलन और ९ बालिश्तवाले में ४५ गैलन पानी आता है। जहाँ तक हो सके, अधिक पानीवाले रहँट यंत्र आदि

लगवाने चाहिए। पूर्वी जिलों में कहीं-कहीं चार-पाँच मनुष्य मिलकर चरसा खींचते हैं, इसे घुर्रा कहते हैं। अब इसका रिवाज कम हो गया है। चरसा का मूल्य १०)-१२) है।

रहँट

किसानों के लिये साधारणतया रहँट अत्यंत उपयोगी यंत्र है, रहँट के मुख्य ६ भाग होते हैं—

(१) बड़ा लोहे का पहिया। यह कुएँ पर लगा रहता है। इस पर बाल्टियों की माला घूमती है। इसे दाँतेदार पहिए घुमाते हैं।

(२) दो दाँतेदार पहिए होते हैं। एक पहिया खड़ा और एक तिरछा लगा रहता है। तिरछा पहिया खड़े पहिए से बड़ा होता है। इस पर लाठ रक्खी रहती है।

(३) लाठ—लकड़ी की होती है। इसमें बैल जुतते और पहियों को चलाते हैं। लाठ १८ फ़ीट से अधिक लंबी नहीं होती।

(४) बाल्टियाँ—लोहे की पत्तियों से बँधी रहती हैं, और इनकी एक प्रकार की माला-सी बन जाती है। ये बड़े पहिए के ऊपर घूमती हैं।

(५) खड़े हुए दाँतेदार पहिए पर लगी होती है। इसकी सहायता से कुएँ के ऊपरवाला बड़ा पहिया चलता है। यह लाठ भूमि से रगड़ खाती है, इसलिये हल्का चलाने के लिये पीतल के बेअरिंग लगाते हैं।

(६) लकड़ी का ढाँचा—जो पृथ्वी में मज़बूती से गड़ा रहता है। इसमें दाँतेदार पहिए और दोनो लाठें लगी रहती हैं।

यह २५-३० फ़ीट से अधिक गहराई पर काम नहीं देता। प्रायः एक रहँट दो चरसे के बराबर पानी देता है। रहँट के लिये ऊँटों का प्रयोग अच्छा है, और व्यय भी कम बैठता है। ऊँट के लिये १३-१४ सेर पानीवाली और बैलों के लिये ५-७ सेर पानीवाली बाल्टियाँ होनी चाहिए।

इनमें अंडी का तेल डालते रहना चाहिए।

बलदेव-बाल्टी

इसे बलदेव मिस्त्री ने बनाया है। ४-६ फ़ीट की गहराई से पानी निकालने में इसका अच्छा उपयोग होता है। नहर आदि के समीप पानी खींचने में इसका उपयोग सर्वोत्तम है। इससे १ दिन में १॥ एकड़ भूमि सींची जा सकती है।

मायादास-बाल्टी

कानपुर-कृषि-कॉलेज के प्रिंसिपल ने इसका आविष्कार किया था। इस यंत्र में दो पहिए होते हैं। यह बाल्टी ६० फ़ीट गहराई तक काम देती है। परंतु १२-१५ फ़ीट पर अच्छा काम देती है।

बुलंदशहरी बाल्टी

इसे पं० तेजशंकर कोचक कृषि-विद्यालय, बुलंदशहर ने निकाला था। यह बलदेव-बाल्टी के समान है, पर इससे १२-१५ फ़ीट गहरे तक पानी निकाला जा सकता है।

बेड़ी

इसे परोहा भी कहते हैं। यह चमड़े, लकड़ी या बाँस की बनी छिछली डलिया-सी होती है। ४ आदमी लगते हैं। २ फ़ीट ऊँचा पानी उठाने में सुगमता से ½ एकड़ रोज़ाना भर सकते हैं।

ढेंकली

१५ फ़ीट गहरे तक काम देती है। एक-दो आदमी दिन-भर में १ एकड़ भूमि भर सकते हैं।

चेन-पंप

४ से ७ फ़ीट तक पानी उठाने में उत्तम है। १० फ़ीट से अधिक गहरे में काम नहीं देता। तालाब आदि में चेन-पंप से पानी उठाया जाता है। इसमें ४ भाग होते हैं—(१) लोहे का नल, (२) गद्देदार जंजीर, (३) पहिया और हैंडिल, (४) लकड़ी की बनी चौड़ी नली। पहिए और नल पर जंजीर होती है, और जंजीर में गोल-गोल गद्दे लगे होते हैं। गद्दों पर गोल चमड़ा रहता है। दोहरा चेन-पंप भी होता है।

एंजिन या बिजली द्वारा भी सिंचाई की जाती है। इसके लिये पानी का अच्छा प्रबंध होना चाहिए। सेंट्रीफ़्युगल-पंप अत्यंत लाभदायक यंत्र है। यदि अधिक पानी लेना हो, तो प्रयोग किया जाय। यह भी एंजिन या बिजली से चलता है। बिजली का मोटर भी इस काम में आता है।

बरहे और क्यारियाँ

ढाल, पानी की मात्रा, भूमि की क़िस्म, फ़सल और कुएँ की दूरी देखकर बरहे बनाने चाहिए। ये पक्के हों, तो अच्छा है। इससे पानी ख़राब नहीं जाता।

साग-भाजी और तरकारी के लिये क्यारियाँ छोटी बनानी चाहिए। नहर के लिये बहुधा बड़ी क्यारियाँ बनाते हैं।

ड्रेनेज

भूमि में पानी अधिक भर जाय, और ज़मीन न सोक सके, तो निकालने का प्रबंध रहना चाहिए, नहीं तो फ़सल पीली पड़ जाती और सड़ जाती है। वायु जड़ों में प्रवेश नहीं करती। लाभदायक कीटाणु मर जाते और हानिकारक उत्पन्न हो जाते हैं। सड़ा हुआ जीव-अंश तेज़ाब में बदल जाता है। जड़ें कमज़ोर हो जाती हैं। घास उग आती है। पौधे कम बढ़ते हैं।

ड्रेनेज का अच्छा प्रबंध न होने से भूमि भी बिगड़ जाती है। नहर के समीप की भूमि में पानी रिसकर रेह बैठ जाता है। नीची भूमि होगी, तो दूसरे खेतों का भी पानी आ जायगा।

फ़सलें

गेहूँ

क़िस्में—मोटे तौर पर गेहूँ दो तरह की क़िस्मों में बाँटा जा सकता है—एक तो देसी, जो पुराने समय से चला आ रहा है, और दूसरी क़िस्म उन गेहुँओं की है, जिनको प्रयोग-शालाओं और कॉलेजों में उन्नत कर लिया गया है। दूसरे प्रकार के गेहूँ आजकल अधिक लाभदायक सिद्ध हो रहे हैं। संयुक्त प्रांत में देसी क़िस्में निम्न-लिखित हैं:—कढ़िया, पिस्सी, दावतखानी, गोरखपुरी, लाल गंगाजली, बरहा, ललिदा, गोरखपुरी सफ़ेद, काठियावाड़, पौंडा इत्यादि। पंजाब की देसी क़िस्में पंजाब नं० ११, ८ ए, १७ और ५१८। इनमें ८ ए सर्वोत्तम है। मध्य प्रांत की क़िस्में ए १३१, ए ११२, ए ११५। बिना सिंचाई और बिना खाद के लिये पूसा नं ५२, १०० और ८९ क़िस्में अच्छी पाई गई हैं। गवर्नमेंट कॉलेजों और प्रयोगशालाओं में गेहूँ की नस्ल सुधारने का सतत प्रयत्न किया जा रहा है, और इसका फल बड़ा संतोष-जनक हो रहा है। नई क़िस्मों के बहुत-से मिश्रित नस्ल केगे हूँ हमारे सामने आ गए हैं, जो दर में बहुत बैठते हैं, और स्वास्थ्य के लिये भी लाभदायक सिद्ध होते हैं।

संयुक्त प्रदेश आगरा और अवध के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न जातियों का गेहूँ लाभदायक सिद्ध हुआ है—

१—पूर्वी भाग बनारस, आज़मगढ़, ग़ाज़ीपुर, प्रतापगढ़, फ़ैज़ाबाद, रायबरेली, लखनऊ, बाराबंकी, सुलतानपुर आदि ज़िलों में पूसा नं० १२ का गेहूँ सर्वोत्तम सिद्ध हुआ है।

२—उत्तरी पूर्वी खंड—बस्ती, गोरखपुर, गोंडा, बहरायच आदि ज़िलों में पूसा नं० ४ सर्वोत्तम और उससे उतरकर कानपुर १३ और पूसा नं० ५२ सिद्ध हुआ है।

३—मध्य भाग—कानपुर, फ़तेहपुर, इटावा, फ़र्रुखाबाद, मैनपुरी, उन्नाव, हरदोई, सीतापुर आदि ज़िलों में पूसा नं० ४, ५४, १२ और १३ विशेष अच्छे सिद्ध हुए हैं।

४—रुहेलखंड, शाहजहाँपुर, बरेली, बदाऊँ, पीलीभीत, मुरादाबाद, बिजनौर आदि ज़िलों में पूसा नं० ४, १२, १५ और मुज़फ़्फ़रनगर के गेहूँ सर्वोत्तम सिद्ध हुए हैं।

५—बुंदेलखंड, बाँदा, मिर्ज़ापुर, हमीरपुर, झाँसी, जालौन, इलाहाबाद आदि ज़िलों में पूसा नं० ५७, ५४ और मुज़फ़्फ़र-नगर में गेहूँ सबसे अच्छा सिद्ध हुआ है।

६—पश्चिमी भाग—अलीगढ़, आगरा, मथुरा, बुलंदशहर, मेरठ, मुज़फ़्फ़रनगर आदि ज़िलों में पंजाब ८ (अ), मुज़फ़्फ़रनगर, पूसा नं० १२, १००, १०१, कानपुर १३ और ४६ की उपज बहुत अच्छी होती है।

७—पहाड़ी खंड—नैनीताल, अलमोड़ा आदि ज़िलों में

कानपुर ४६ फेडरेशन और पूसा नं० १२ की उपज खूब होती है।

बिहार-प्रांत में पूसा नं० ५२, ८०, ५, १/२, अ १५२, ११५, ६८, ४२ और ११३ क़िस्में खूब होती हैं।

अन्य देशों के मुक़ाबिले में हमारे देश में गेहूँ की पैदावार बहुत कम होती है। नीचे दी हुई तालिका से प्रकट होता है कि हम संसार के अन्य देशों से कितना पिछड़े हुए हैं—

सन् १९२५-६ में २३९७९००० एकड़ भूमि बोई गई। औसत ८ मन एकड़। सन् १४-१५ में ८ मन ३० सेर फ़ी एकड़। १८-१९ में ९ मन। १९-२० में ९॥ मन। २१-२२ में ९ मन ३० सेर। २३-२४ में ८॥। मन। २२-२३ में ९ मन।

अन्य देशों की पैदावार १९२९ में

देश	क्षेत्रफल एकड़	पैदावार टनों में
अलजीरिया	३७९४०००	८९००००
अर्जेंटाइन	१३५८५०००	३६७४०००
आस्ट्रेलिया	१४०८७०००	३३८१०००
बलगेरिया	२६६००००	८८७०००
कनाडा	२५२४४०००	८००६०००
आस्ट्रिया	५१५०००	३०९०००
डेनमार्क	२५७४४०००	३१९०००
मिश्र	१६१४०००	१२०९०००
फ्रांस	१२७४४०००	८५५००००

जर्मनी	३९५३०००	३२८९०००
हंगेरी	३७०६०००	२००४०००
इटली	११७८१०००	६९५६०००
जापान	१२१२०००	८१५०००
निदरलैंड ..	११२०००	१४६०००
न्यूज़ीलैंड	२३४०००	१९००००
पोलैंड	३५२५०००	१७६००००
रूमानिया	६७६१०००	२६६६०००
स्पेन	१०६१८०००	४१२३०००
स्वीडन	५७४०००	५०९०००
स्विटज़रलैंड	१२७००	१११०००
ट्यूनिस	१७३९०००	३२९०००
दक्षिणी आफ्रिका	९३७०००	२७५०००
संयुक्त राज्य	१३८४०००	१३३००००
यूनाइटेड स्टेट्स	६१११६०००	२१५५८०००
यूरागुए	११०७००० एकड़	३५८००० टन

संसार के प्रमुख देशों का क्षेत्रफल और पैदावार देखने से हमारे देश का विशाल क्षेत्रफल और कम पैदावार देखकर हताश हो जाना पड़ता है। नीचे की तालिका में १९३०-३१ सन् में भिन्न प्रांतों की गेहूँ की पैदावार दी हुई है—

भारत में गेहूँ की पैदावार और क्षेत्रफल १९३०-३१

	क्षेत्रफल एकड़	पैदावार टनों में
बंबई सिंध व राज्य	२८१००००	५८७०००
बंगाल	१४३०००	३४०००
संयुक्त प्रांत	७७३१०००	२७२५०००
पंजाब	१०६४१०००	३५६००००
बिहार-उड़ीसा	१२१३०००	४५४०००
मध्य प्रांत	३१५१०००	६४१०००
सीमा-प्रांत	८९००००	२१६०००
अजमेर-मेरवाड़ा	२४०००	६०००
दिल्ली	३८०००	१००००
हैदराबाद	११७३०००	१३५०००
मैसूर	४०००	१०००
बड़ौदा	७३०००	२००००
ग्वालियर	११२७०००	२७२०००
सेंट्रल इंडिया	११४१०००	३२४०००
राजपूताना	१२४३०००	३२००००
जोड़	३२१८०००० एकड़	९३०५००० टन

औसत फ़ी एकड़ १९३०-३१ (पौंडों में)

मद्रास	....	बर्मा	....	कुर्ग	....
बंबई	४६८	बिहार-उड़ीसा	८३८	दिल्ली	५८९
बंगाल	५३३	मध्यप्रांत बरार	४५९	हैदराबाद	२५८
संयुक्त प्रांत	७९०	आसाम	....	मैसूर	३६३
पंजाब	७४९	सीमा-प्रांत	५४४	बड़ौदा	६१४
अजमेर-मेरवाड़ा	५६०	ग्वालियर	५१४	सेंट्रल इंडिया	३७४
राजपूताना	५७७				

गेहूँ बहुत जुताई चाहता है। जुताई ऐसी बारीक और गहरी होनी चाहिए कि यदि जोते हुए खेत में पानी का भरा घड़ा मनुष्य के बराबर ऊँचाई से छोड़ा जाय, तो टूटने न पावे। कम-से-कम ८-९ इंच गहरी जुताई तो होनी ही चाहिए। किसान प्रायः वर्षा के अंत से गेहूँ की जुताई शुरू करके कुँआर और कार्त्तिक दो महीने-भर कड़े परिश्रम से ख़ूब जुताई करते हैं। यह मौसम जुताई के लिये उपयुक्त है। जुते हुए खेत पर पड़ नहीं पड़ने पाती, क्योंकि मौसम सम होता है। मटियार मिट्टी में गेहूँ ख़ूब होता है, पर इसकी जुताई बहुत कड़ी होती है।

बीज—बीज ख़ूब मोटा-ताज़ा और रोग-रहित लेना चाहिए। किसान बीज चुनने में बड़ी ग़लती करते हैं। प्रत्येक प्रांत के लिये भिन्न-भिन्न परिमाण में बीज डालना उपयोगी सिद्ध हुआ है। प्रायः यह मात्रा ३० सेर से ६० सेर प्रति एकड़ रहती है। प्रायः पूर्वी यू० पी० में ५० से ६० सेर प्रति एकड़ बोया जाता है। मध्य यू० पी० में ४०-४५ सेर, पश्चिमी यू० पी० में ३५-४० सेर तथा पंजाब-प्रांत में ३०-३५ सेर बोया जाता है। मालवा में भी ३५ सेर प्रति एकड़ बोया जाता है। गवर्नमेंट-प्रयोगशालाओं में यह परिमाण उचित सिद्ध हुआ है। बीज साधारणतया आधे कार्त्तिक से आधे अगहन तक बोए जाते हैं। बोने के लिये दो प्रणालियाँ काम में लाई जाती हैं—कूँड़ करके बोना और छिटककर बोना।

लायलपुर-सीड-ड्रिल बोने के लिये आसान तरीक़ा है। इससे बीज ठीक परिमाण में और एक समान गिरते हैं। कम वर्षा-वाले प्रांतों में, जैसे सिंध, पंजाब, पश्चिमी यू० पी० में, कूँड़ करके बुवाई होती है। किसान पहले हल से ज़रा चौड़ा कूँड़ करते हुए चलता है। उसके पीछे एक स्त्री टोकरी में गेहूँ भरे हुए चलती और उससे गेहूँ निकालकर, अपनी मुट्ठी में भरकर तर्जनी और अँगूठे की सहायता से कूँड़ में गिराती चलती है। इस प्रणाली को 'सी देना' कहते हैं। वर्षावाले प्रांतों में—जैसे यू० पी० का पूर्वी भाग, बिहार आदि में—पहले बीज जुते हुए खेत पर छिटक देते हैं, फिर उस पर पाटा या सरावन चला देते हैं, जिससे बीज मिट्टी के अंदर छिप जाते हैं। पाटा न देने से सारस आदि पक्षी बीज को खा जाते हैं।

सिंचाई—गेहूँ सिंचाई चाहता है। अधिक खुश्क प्रांतों में ३-४ बार सिंचाई करनी पड़ती है। वास्तव में गेहूँ की पैदावार के लिये सिंचाई सबसे मुख्य है। हमारे किसान सिंचाई करने में बहुत असावधानी करते हैं। यदि मिट्टी अधिक ख़ुश्क होती है, तो एक सिंचाई तो जोतने के पहले की जाती है। फिर जब गेहूँ के सब बीज उग आवें, और खेत पर हरे रंग की चादर-सी बिछी जान पड़े, तब फ़ौरन सिंचाई कर देनी चाहिए। दूसरी सिंचाई जब पौधे दो इंच से ऊपर होने लगें, तब कर देनी चाहिए।

साधारण तौर पर दो सिंचाइयाँ गेहूँ के लिये काफ़ी होती हैं। पर कुछ कृषि-विशेषज्ञों (जैसे हेवार्ड आदि) का कथन है कि "चार सिंचाइयों से गेहूँ की फ़सल सबसे अच्छी होती है।"

सिंचाई करने में खेत को एकबारगी पानी से न भर देना चाहिए, वरन् सेलें बाँधकर धीरे-धीरे भरना चाहिए। इससे पानी ख़ूब लग जाता है।

खाद—प्रयोगशालाओं में गेहूँ के पौधे के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की खादों की जाँच की गई। बढ़िया खादों की सूची पूसा कानपुर और लायलपुर की प्रयोगशालाओं से मिल सकती है। ग्रामीण किसानों के लिये सड़ा हुआ गाय, बैल, भैंस का गोबर, कंडे की राख, शोरा, कूड़ा-कचड़ा आदि सबसे अच्छी खाद है। डी० एन० राय साहब की, जो बंगाल के कृषि-विशेषज्ञ थे, यही राय है। प्रायः एक एकड़ में २०-२१ लढ़ी खाद बहुत काफ़ी होती है। खाद खेत जोतने के पहले ही डालनी चाहिए, जिससे उसका प्रभाव जुती हुई मिट्टी में आ जाय।

रोग—गेहूँ के पौधे में दो रोग बड़े भयंकर लग जाते हैं, जो कभी-कभी तो सारी फ़सल चौपट कर देते हैं। गेरुआ (rust) लगना बड़ी भीषण बीमारी है। यह रोग जब आकाश में ख़ूब बादल छाए होते हैं, और उनका घेरा बँध जाता है, तब ख़ूब फैलता है। पूस और माघ के महीनों में, जब निरंतर वर्षा होती और वायु ज़ोर से चलती है, यह उत्पन्न हो जाता

है। यह कई प्रकार का होता है। काला गेरुआ, पीला गेरुआ और नारंगी गेरुआ मुख्य भेद हैं। काला गेरुआ अधिक हानि पहुँचाता है। इससे पौधे का डंठल काला हो जाता और धीरे-धीरे पौधा निर्बल होकर गिर जाता है। यदि बाली आई होती है, तो जैसी-की-तैसी रह जाती है। पीला गेरुआ पहले पत्तियों पर आघात करता है। उनका रंग पीला पड़ जाता है, वे गाढ़े पीले रंग के दाग़ों और लकीरों से भर जाती हैं। इस रोग को रोकने का कोई सफल तरीक़ा नहीं ज्ञात हो सका है। यह प्रायः सारे संसार में पाया जाता है, और गेहूँ की फ़सल को हानि पहुँचाता है। नारंगी गेरुआ पौधे को धीरे-धीरे निर्बल कर देता है। जैसे किसी मनुष्य को टी० बी० (क्षय) हो जाती है, उसी तरह यह भी पौधे के साथ लगता है। पौधे का रंग नारंगी हो जाता है, और सारी बाढ़ रुक जाती है। किसान यदि सावधानी से काम करें, तो इस बीमारी से अपनी फ़सल बचा सकते हैं। इसके लिये चूल्हे की राख बड़ा काम करती है। जहाँ गेरुआ लगे, फ़ौरन् रात में पाँच बजे, जब पौधे ओस में नहाए खड़े हों, यह राख छिड़क देनी चाहिए। परंतु इसके लिये पहले से ही सावधानी रक्खी जाय, तो अधिक अच्छा रहता है। गेहूँ की बुवाई में पिछाई नहीं करनी चाहिए, क्योंकि गेरुआ खड़ी फ़सल में कोमल पौधों पर ही पहले आक्रमण करता है।

फ़सल बदलते रहना चाहिए। एक ही खेत में गेहूँ काटकर फिर गेहूँ न बोने चाहिए, और जिस खेत में गेरुआ लग चुका हो, उसमें उत्पन्न गेहूँ बीज में न डालने चाहिए। यदि गेरुआ लगने के आसार मालूम पड़ें, तो एक प्रकार का चूर्ण, जो इसी काम के लिये तैयार हुआ है, किसी भी गवर्नमेंट-प्रयोगशाला से मँगवा लेना चाहिए। उसमें लिखी हुई विधि के अनुसार उसका छिड़काव करने से बीमारी नष्ट हो जाती है।

कंडुआ भी एक प्रकार की बीमारी है, जो गेहूँ और विशेष-कर जौ के पौधों में हो जाती है। यह बाली में लगता है, और उसे पूर्णतया नष्ट कर देता है। सारे दाने नष्ट हो जाते हैं, और उनके स्थान पर काला चूरा भर जाता है। इसे रोकने का एक ही उपाय है कि इससे पीड़ित पौधे को उखाड़-कर फेक देना चाहिए। यह प्रत्येक पौधे में नहीं होता, जहाँ-तहाँ किसी-किसी पेड़ में हो जाता है, इसलिये इसे उखाड़ फेकना आसान है।

किसी-किसी खेत में दीमक लग जाती है। यह तब लगती है, जब पृथ्वी में ख़ुश्की अधिक होती है, और वह सूखने लगती है। इसे मारने की सबसे बढ़िया तरकीब यह है कि खेत में सिंचाई कर देनी चाहिए।

गेहूँ जब पक जाय, तो उसे गट्ठों में बाँधकर खुले मैदान में गौरे लगवाना चाहिए, जिससे खूब सूख जायँ, और बालियाँ

ऊपर निकली रहें। पेड़ के नीचे रखने से वर्षा होने पर गट्ठ बड़ी देर में सूखते हैं, और कभी-कभी अनाज ख़राब हो जाता है।

गेहूँ की दर भिन्न प्रांतों में भिन्न पड़ती है। यू० पी० में बिना पानी दिए हुए खेत में १० मन प्रति एकड़ उपज होती है और पानी दिए हुए खेत में इससे ड्योढ़ी। गवर्नमेंट की प्रयोगशालाओं में ५० मन प्रति एकड़ तक उपज हो चुकी है। गेहूँ के संबंध में कानपुर पूसा और लायलपुर की प्रयोगशालाएँ बड़ा महत्त्व-पूर्ण कार्य कर रही हैं। इनके ऑफ़िसों से किसानों तथा ज़मींदारों को मुफ़्त सम्मतियाँ दी जाती हैं। यदि किसान इनसे अपना संपर्क स्थापित करें, तो उन्हें बड़ी-बड़ी ग़लतियों का ज्ञान हो जायगा, और दैनिक ग़लतियों के कारण अपनी फ़सल को कमज़ोर होने से बचा सकेंगे।

चावल

चावल संसार की आधी जनता का भोजन है। भारतवर्ष में इसकी मुख्य फ़सल होती है। जितनी जातियाँ चावल की हैं, उतनी किसी भी अनाज की नहीं। यदि गिने जायँ, तो सैकड़ों नाम चावल के मिलेंगे। केवल बंगाल में वाट साहब ने चार हज़ार तरह का चावल गिना था, फिर पूरे भारत का क्या कहना। चावल कुछ मोटे होते हैं कुछ महीन, जो दानों को देखकर बताया जा सकता है। नैपाल की तराई में, जिसे थरुहात भी कहते हैं, विचित्र प्रकार

के चावल मिलते हैं। एक प्रकार का चावल ऐसा होता है, जो देखने में तो छोटा ही मालूम होता है, पर पकाने पर फूलकर बादाम के बराबर हो जाता है। कुछ चावल दो ही महीने में पक जाते हैं, जैसे साठी धानी और नं० १-२-१२-२१-२६-६५ और नगीना १ के धान। कुछ जातियाँ देर में पकती हैं, जैसे बाँसमती, हंसराज, रामभोग, सौंघी और नं० १७-२२-१०० और नं० ३। भारतवर्ष में चावल का नाम बहुत प्राचीन है। ऋग्वेद में भी इसका वर्णन आया है। और, प्रायः हिंदुओं के प्रत्येक शुभ कार्य में अक्षत कहकर प्रयोग में लाया जाता है।

मिट्टी—चावल नीची पर उपजाऊ मिट्टी चाहता है। मटिआर तथा दुमट, दोनो प्रकार की मिट्टी इसके लिये ठीक है। यह बलुई पृथ्वी में नहीं होता। इसके लिये दो-तीन जोतें काफ़ी हैं। जब बरसात में ख़ूब पानी बरसता है, तब यह बोया जाता है। जिन चावलों की पौद लगती है, उनका थरहा खेत के समीप रखना चाहिए, और पानी बरसने के बाद क़तारों में खेत में लगा देना चाहिए।

खाद—चावल या मकई में कोई खाद नहीं डाली जाती, पर यदि डाली जाय, तो फ़सल अच्छी उगती है। गोबर की खाद अधिक उपयोगी होती है। खाद बरसात के पहले डालनी चाहिए। और, खाद डालकर दो-तीन जुताइयाँ ज़रूर कर दी जायँ, नहीं तो पानी बरसने से खाद बह जायगी।

पौद लगनेवाले पौधों में १५ गाड़ी प्रति एकड़ खाद उपयोगी सिद्ध हुई है। चावल में १०० भाग में ६ भाग राख रहती है। राख में ये चीजें रहती हैं—सिलिका २ भाग, पुटाश २३.७ भाग, चूना ३.०१६ भाग, सोडा ४ भाग, मैग्नेशिया १२.१, भाग फ़ास्फोरस ५५ भाग, गंधक का तेजाब १.०५ भाग। इसको फ़ास्फ़ोरस एसिड की अधिक आवश्यकता है।

चावल के खेतों में हड्डियों का बुरादा डालकर देखा गया, तो उसकी उपज में वृद्धि पाई गई। कहीं-कहीं फ़सल पर शोरा भी छिड़का जाता है।

बुवाई—जो धान छिटककर बोया जाता है, वह आषाढ़ से सावन तक बो दिया जाता है। पर जमौआ धान आषाढ़ से कार्त्तिक तक बोया जाता है। कभी-कभी, जब वर्षा नहीं होती, खेतों को नहर के पानी से भरकर धान बोते हैं। जो धान बारीक होते हैं, उनको पहले एक छोटे-से खेत में खूब खाद डालकर बोते हैं। जब पौधे कुछ बढ़ने लगते हैं, तब उनको उखाड़कर बड़े खेत में क़तारों में लगाते हैं। छिटककर बोए जानेवाले धान प्रायः एक एकड़ में १ मन लग जाते हैं, पर पौदे के लिये १०-१२ सेर ही काफ़ी होते हैं। पौद लगाते समय एक पौधे को दूसरे से ६ इंच की दूरी पर लगाना चाहिए।

रोग—चावल के खेतों में रोग भी खूब लगते हैं, पर ये गेहूँ के रोगों की तरह भयंकर नहीं होते। चावल का रोग

पानी न मिलना ही है। एक प्रकार का कीड़ा होता है, जिसे गाँवों में गंधी कहते हैं, वह कभी-कभी उगी हुई धान की बाल का रस चूस लेता है, जिससे पूरी बाल बरबाद हो जाती है। यह कीड़ा सर्वत्र पाया जाता है। किसान इससे बचने के लिये एक मनोरंजक तरकीब से काम लेते हैं। जब कीड़ा लगने लगता है, तो दो आदमी एक लंबी धोती, चादर या टाट के टुकड़े को दोनो ओर से फैलाकर पकड़ते हैं, और पौधों मे सटाते हुए, उनके ऊपर से दौड़ाते हुए, एक छोर से दूसरे छोर तक ले जाते हैं। इस प्रकार कीड़े कपड़े में फँस जाते हैं।

उपज—धान की उपज क़िस्म के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है।

साधारण तौर पर छिटककर बोनेवला धान एक एकड़ १२ मन से १६ मन तक और पौदवाला २० से २५ मन प्रति एकड़ बैठता है। धान संसार-भर में ६ करोड़ टन उत्पन्न होता है। उनमें से ३॥ करोड़ टन ब्रिटिश भारत और बर्मा में ही होता है। नीचे लिखी तालिका से मोटे तौर पर चावल की उपज का अनुमान लगाया जा सकता है—

देश	उपज टनों में प्रतिवर्ष
भारतवर्ष	३५००००००
जापान	१०६०००००
जावा सुमात्रा	४२५००००

देश	उपज टनों में प्रतिवर्ष
फ्रेंच इंडो चाइना	३५०००००
स्याम	२५०००००
अमेरिका संयुक्त राष्ट्र	५२००००
मेडागास्कर	४५००००
मिस्र	३६६०००
इटली	३२००००
मेक्सिको	१५०००
ब्राजील	२५००००
फ़ारस	१७२०००
लंका	१७०००००
काकेशिया	१५००००
स्पेन	१२००००
ब्रिटिश गायना	४१०००
बुखारा खीवा	४००००
पेरू	४००००
मेसोपोटामिया	३००००
हांगकांग	१५०००
युकेराडर	१५०००

८ करोड़ १५ लाख एकड़ भूमि में धान बोया जाता है, जो पूरे भारतवर्ष-भर की $\frac{1}{3}$ है। इसमें ६० करोड़ मन धान हुए।

औसतन् पैदावार प्रति एकड़

हिंदुस्थान	१२८१ पौंड
जापान	२८७५ ,,
स्याम	१६८० ,,
अमेरिका	२२५२ ,,
इटली	४०६२ ,,
मिस्र	२८४७ ,,
स्पेन	५८०० ,,

इस प्रकार हम देखते हैं, भारतवर्ष में चावल की पैदावार प्रति एकड़ अन्य देशों से बहुत कम है। इसका कारण और निराकरण-गवर्नमेंट-प्रयोगशालाओं से समय-समय पर निकली हुई पुस्तिकाओं और पत्रों में दिया रहता है। मुख्य कारण हमारे किसानों की अज्ञानता और प्राचीन ढंग के औज़ारों से काम लेना है। भारतवर्ष में खेती की पद्धति का सुधार होने की बड़ी आवश्यकता है।

गन्ना

गन्ना भारतवर्ष की प्रधान उपज है। संसार-भर में हमारा देश पहला नंबर रखता है। परंतु हमारे किसानों की अज्ञानता के कारण प्रति एकड़ उपज बहुत कम होती है, केवल ३०० मन, जो अन्य देशों की समानता करते हुए बहुत कम है। क्यूबा में प्रति एकड़ ६०० मन, जावा में १८०० मन और हवावा में २१०० मन प्रति एकड़ पैदावार होती

है। यही कारण है, भारतवर्ष में गन्ने की खेती का क्षेत्रफल अधिक होते हुए भी यहाँ जावा आदि देशों से प्रतिवर्ष शकर आती है। ईख की खेती में सुधार करने की अत्यंत आवश्यकता है। भाग्य-वश हमारे देश की पृथ्वी संसार के महान् उपजाऊ देशों की पृथ्वी से श्रेष्ठ सिद्ध हुई है, अतः प्रत्येक प्रकार की पैदावार यहाँ खूब हो सकती है।

जातियाँ—ईख की कई जातियाँ होती हैं। भारतवर्ष का प्राचीन गन्ना, जिसे पौंर, पनगा और डगचन कहते हैं, अब कहीं नहीं बोया जाता। नए क़िस्म के गन्ने—जैसे २६०, जावा, फ़ैजुल, कोयमबटूर नं० २४४, ४२१, ३१२, ३१३, २८१, ३००, शाहजहाँपुर नं० ४८—खूब होते हैं। देसी गन्नों से इन गन्नों में रस और शकर दोनो अधिक परिमाण में बैठते हैं।

उत्तरी भारत में शाहजहाँपुर की प्रयोगशाला गन्ने की उपज के लिये प्रसिद्ध है। इस ज़िले का गुड़, शकर और राब सारे देश-भर में प्रसिद्ध है। पर दुःख की बात है कि केवल रौज़ा को छोड़कर कोई ऐसा गन्ने का मिल इस ज़िले में नहीं है। किसान स्वयं रस औटाकर, राब और सिवार देकर, शकर बनाते हैं। कहीं-कहीं महाजन बेलें करवाते हैं, जिनमें किसी बाग़ में सब असामियाँ कोल्हू गाड़कर गन्ना पेरती हैं, और सारा रस महाजन के हाथ बेच देती हैं। महाजन उसी बाग़ में कड़ाहों में रस औटाकर राब बना लेते हैं, और मशीन द्वारा उसकी शकर निकालकर

बेच देते हैं। फिर भी मिलों के समान साफ़ और दर-दार शकर नहीं बन पाती। पर खाने में यह शकर उतनी गर्म नहीं होती, जितनी मिलों की।

शाहजहाँपुर की प्रयोगशाला में प्रतिवर्ष नवीन-नवीन गन्नों की जाँच होती है, और यह देखा जाता है कि किस क़िस्म का गन्ना अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। प्रतिवर्ष उसका विवरण प्रकाशित किया जाता है।

गन्ने की पैदावार के लिये प्रायः खेत एक साल यों ही छोड़ दिया जाता है। दूसरे वर्ष उसमें गहरी जुताई की जाती है। गेहूँ के समान गन्ने के लिये भी गहरी और महीन जुताई चाहिए। मटियार और दुमट मिट्टी में गन्ना खूब होता है। गाँवों में बोने की दो प्रणालियाँ हैं—एक तो हल द्वारा, दूसरे कसी से खोद-खोदकर गाड़ना हल द्वारा बोने की प्रणाली बहुत प्राचीन और लाभदायक है। पर हल गहरा और चौड़ा होना चाहिए। प्रायः फाल के दोनो ओर लकड़ियों की खपच्चें और पतेल बाँध देते हैं, जिससे कूँड़ खूब चौड़ा होता है। एक साथ चार-पाँच हल चलते हैं। सबसे अंत में चौड़ा हल चलता है। उसके पीछे एक मनुष्य गन्ने के टुकड़े कूँड़ में डालता चलता है। जो टुकड़ा ठीक नहीं पड़ता, पैर से ठीक कर देता है। दूसरी विधि यह है कि पहले गन्नों को टुकड़ों में काट लेते हैं। फिर पाँच या छ मजदूर लाइन बाँधकर समान दूरी पर मिट्टी को कसी द्वारा

खोदते हैं, और एक टुकड़ा रखकर फिर बराबर कर देते हैं। यह विधि है तो बहुत अच्छी, पर मजदूर कभी-कभी गहरा गड्ढा खोदकर ऊपर ही गन्ना रख देते हैं, या आलस्य-वश ठीक बराबर नहीं करते। फलतः गन्ना भीतर-ही-भीतर सूख जाता या दीमक खा लेती है। गन्ना बोने में होशियार मजदूर लेने चाहिए। एक और बात ध्यान देने योग्य है कि गन्ना बोते समय गन्ने के टुकड़े की आँखें इधर-उधर रहें, नीचे कभी न रहें, नहीं तो आँख सड़ जायगी और पौधा न उगेगा। यह बात मजदूर को ध्यान में रखनी चाहिए। शाहजहाँपुर के फ़ार्म में एक क़तार से दूसरी क़तार में चार फ़ीट की, पर गाँवों में साधारण तौर पर एक गज़ की दूरी रक्खी जाती है। कहीं-कहीं इससे भी कम। घना बोने से गन्ने पतले रह जाते हैं, इसलिये गन्ने हमेशा कम-से-कम एक गज़ के फ़ासले पर बोने चाहिए।

बोने के लिये गन्ने ख़ूब मोटे, लंबे और रसदार लेने चाहिए। फिर एक गन्ने के ऐसे टुकड़े करें कि प्रत्येक टुकड़े में कम-से-कम तीन आँखें रहें। पहले से टुकड़े काटकर नहीं रखने चाहिए, नहीं तो आँखें कमजोर हो जाती हैं। काटकर फ़ौरन् बो देना चाहिए। देसी गन्ने बोने के लिये गन्ने का सबसे ऊपरी भाग प्रायः एक फ़ुट और आग के नीचे का भाग एक फ़ुट, इस प्रकार दो फ़ीट लंबे टुकड़े काटकर रख लिए जाते थे। प्रायः नित्य ही स्वस्थ गन्नों में से टुकड़े काटे

जाते थे। उनको गट्ठे में बाँधकर, एक गड्ढा खोदकर उसमें रख देते थे, और ऊपर से पाती डालकर रोज़ पानी से छिड़कते थे। यह बीज बहुत उगनेवाला होता था, और उसकी प्रत्येक आँख उगती थी। नवीन गन्नों के लिये भी यह विधि उपयोगी सिद्ध हुई है, पर इसमें झंझट अधिक होने के कारण गन्ने के टुकड़े ही बोए जाते हैं।

औसतन् एक एकड़ में ३० मन गन्ने की ज़रूरत होती है। ३० मन गन्ने में प्रायः २१,००० टुकड़े हो जाते हैं, और इन टुकड़ों से प्रायः ३०,००० से ४५,००० तक पेड़ उगते हैं।

गन्ना प्रायः माघ में बोया जाता है। जब गन्ना ख़ूब पक जाय, और उसमें राब की दर अपनी उच्चतम सीमा पर पहुँच जाय, तब बोना चाहिए। बोने का समय जाड़े का ही है। गर्मी में कभी न बोए। फागुन तक गन्ना अवश्य बो दिया जाना चाहिए। आठ-दस रोज़ में पौधे ऊपर उठते हैं। कभी-कभी दो सप्ताह भी लग जाते हैं।

खाद—ईख के लिये बहुत खाद चाहिए। खाद प्रायः वर्षा के पहले डाली जाती है। गाँवों में दो समय खाद डाली जाती है—एक तो जोतते समय, दूसरे, जब पौधे ख़ूब उग आते हैं, उस समय खाद डालकर गोड़ देते हैं, जिससे बरसात में बह न जाय। बोने के पहले खाद डालने से ईख ख़ूब उगती है, और पौधे मोटे-ताज़े रहते हैं। पर यदि जमने के बाद दो मास के भीतर सिंचाई नहीं की जाती, तो पौधे गर्मी के

कारण सूख जाते हैं। अतः यदि खाद बोने के पहले डाली जाय, तो सिंचाई का प्रबंध पहले कर लेना चाहिए। जब पौधे एक फ़ुट ऊँचे उग आते हैं, उस समय खाद देने से बरसात में ईख खूब बढ़ती है, और खाद का प्रभाव पानी बरसने पर प्रकट होता है। बढ़ने पर सलफ़र ऑफ़् आमोनिया बहुत उपयोगी खाद है। इसको सींचते समय थोड़ा-थोड़ा बालू में मिलाकर बखेरना चाहिए, और तुरंत पानी दे देना चाहिए। दीमक लगने का भय हो, तो नीम की खाद (खली) डालनी चाहिए। ईख के १०० भाग में ७२ भाग पानी, १५ भाग तंतु, १२ भाग चीनी और ½% राख होती है, अतः इसे पानी अधिक चाहिए। गन्ने में पुटाश अधिक आवश्यक है। रेतीली धरती में गन्ना अच्छा नहीं होता। एक टन गन्ने के लिये ३.०६८ पौंड नाइट्रोजन और २१.६६८ पौंड खनिज चाहिए।

गुवार, उड़द, मटर की खेती के बाद ईख बोते हैं। नील के खेत में ईख बोवें, तो खूब पैदा होती है। उड़द और सनई की हरी खाद देने से खेत सशक्त हो जाते हैं, फ़सल अच्छी होती है। नाइट्रोजन की खाद इसके लिये बहुत उपयोगी है। मेथी बो देने और हरी होने पर जोत देने से अच्छी खाद बन जाती है। फ़सल भी अच्छी होती है। एक एकड़ में २० गाड़ी गोबर की खाद, २० मन खली, ३ मन सुपर फ़ास्फ़ेट या १० मन हड्डी का चूरा चाहिए।

पौंड़ा गन्ना के लिये ४०० मन तथा ईख के लिये ३०० मन प्रति एकड़ पर्याप्त होती है। यह खाद सड़े हुए गोबर की होनी चाहिए, परंतु इसमें यदि २० मन अंडी की खली और २-३ मन सल्फ़ेट ऑफ़् आमोनिया या नाइट्रेट मिला दें, तो बहुत लगती है।

रोग—गन्ने में बहुत-से कीड़े लग जाते हैं। एक कीड़ा सफ़ेद रंग का होता है। वह उड़ भी सकता है। जब वह लग जाता है, तो पत्तियों में छेद कर देता है। फलतः पेड़ कमज़ोर हो जाता है। एक कीड़ा सूँड़ी की तरह होता है। वह गन्ने में दृढ़ता से चिपक जाता और उसकी आँख खा डालता है। इसके अतिरिक्त सुअर, गीदड़, लोमड़ी, बंदर, सलाई भी ख़ूब हानि पहुँचाते हैं। यदि बोते समय गन्ने के टुकड़ों को बोर्डो मिक्श्चर में डुबा-डुबाकर बोएँ, तो बीमारी का भय नहीं होता। बोर्डो मिक्श्चर में १ सेर बिना भीगा चूना, १½ सेर तूतिया और १२½ सेर पानी डालना चाहिए।

जब गन्ना पक जाय, तब काटना चाहिए। कच्चे गन्ने का रस फीका और हानिकारक होता है। गुड़ भी अच्छा नहीं बनता। गाँवों में प्रायः किसान कोल्हू में गन्ना पेरकर रस को कड़ाह में औटते और इच्छानुसार राब या गुड़ बना लेते हैं। जहाँ मिल होते हैं, वहाँ गन्ना ही बेच दिया जाता है। औसत १०० मन रस में १५ मन राब, १२ मन गुड़ या ७

मन शकर होती है। गन्ने की खेती के लिये हमारे देश में पर्याप्त साधन हैं। किसानों को इधर अधिक उन्नतिशील बनना चाहिए।

कपास

भारतवर्ष कपास का जन्म-स्थान है। यहाँ से मिस्र, स्पेन, इटली आदि देशों में इसका प्रचार हुआ। भारतवर्ष में कपास की खेती का क्षेत्रफल संसार के सब देशों से अधिक है। पर खेद की बात है कि हमारे देश की कपास के रेशे अमेरिका और मिस्र देश की कपास की भाँति लंबे, मज़बूत और चमकदार नहीं होते। स्वर्गीय ताता ने अमेरिकन कपास की खेती का प्रयोग भारतवर्ष में भी किया। फल बड़ा संतोष-जनक निकला। अतः किसानों को उन्नतिशील क़िस्में बोनी चाहिए, जिससे वस्त्र की मिलों में कपास के अच्छे दाम मिल सकें। कपास की पचासों क़िस्में हैं, पर इसका क्षेत्रफल अधिकांश दक्षिणी भारत में है, जहाँ धारवार गदगा सूरत नं० १०२७, बगद नं० ४ और ८, मोली सोनी, नंदिया सरकार नं० १४, हगासी नं० २६, अमेरिकन नं० सी० ए० ६ आदि बोई जायँ, तो ख़ूब होती हैं। हमारे प्रांत (यू० पी०) के लिये अलीगढ़ ए० १६, कानपुर नं० ४०२ और ५२० तथा जालौन नं० १ उत्तम रहती है।

कपास के लिये मटियार पृथ्वी अच्छी नहीं होती। दुमट और रेतीली मिट्टी, जिसमें खाद ख़ूब दी गई हो,

कपास के लिये बहुत अच्छी होती है। मालवा तथा दक्षिण की काली मिट्टी कपास के लिये विख्यात है। कहते हैं, किसी समय ज्वालामुखी का भीषण उद्गार हुआ था। उसका लावा सारे प्रांत में फैल गया, वही कालांतर में काली मिट्टी हो गया, जो आज कपास के लिये प्रसिद्ध है। वास्तव में काली मिट्टी में बहुत गुण पाए जाते हैं। यदि वहाँ नालियों द्वारा पानी का प्रबंध हो जाय, और उचित मात्रा में खाद डाली जाय, तो संसार की उत्तमोत्तम कपास वहाँ उत्पन्न हो सकती है। कपास वर्षा अधिक नहीं चाहती। केवल १२ से २० इंच तक पर्याप्त है, और वर्षा धीरे-धीरे आरंभ में ही होनी चाहिए। कपास निकलने पर वर्षा हानिकारक होती है। जुताई भी गेहूँ के बराबर नहीं होती। केवल ५ या ६ जुताइयों से अच्छा कपास उग आती है। पर यदि किसी वर्ष पानी कम बरसे, तो जुताई गहरी कर देनी चाहिए। जुताई के समय ही खाद डालनी चाहिए, जिससे पृथ्वी में पौधा उपजाने की शक्ति आ जाय। और, यह भी स्मरण रहे कि जिस साल कम वर्षा हो, उस साल बीज को पानी में ख़ूब भिगोकर बोना चाहिए। बिनौले ख़ूब मोटे और साफ़ लेने चाहिए। कहीं-कहीं बिनौलों को मिट्टी और गोबर में मिलाकर बोते हैं। ऐसा करने से बीज में अच्छी खाद लग जाती है। अधिक-से-अधिक ७ सेर प्रति एकड़ बीज डालने चाहिए। अधिक डालने से खेत बहुत घना हो

की तरह अरहर या भिंडी नहीं मिलानी चाहिए। शेष सब बातें, निकाई-गुड़ाई आदि, देसी कपास की भाँति ही करनी चाहिए।

भारत में २ करोड़ एकड़ में कपास बोई जाती है।

बंबई	६००००००	एकड़
मध्य प्रांत	१२०००००	"
बरार	३००००००	"
मदरास	१५०००००	"
पंजाब	१५०००००	"
बर्मा	२००००००	"
हैदराबाद दक्षिण	३४०००००	"
अजमेर	४००००	"
मध्य भारत	१००००००	"
राजपूताना	४५००००	"

एक एकड़ में उपज

भारत	इँगलैंड	अमेरिका	मिस्र
६५ रतल	२०० रतल	२२५	४२५

इससे पता चलता है कि हमारे देश में प्रति एकड़ कितनी कम कपास उत्पन्न होती है। यदि इस ओर अधिक ध्यान दिया जाय, तो उपज बढ़ सकती है।

आलू

आलू का सारे संसार में प्रचार है। इसका जन्म-स्थान

दक्षिणी अमेरिका माना जाता है। हमारे देश में दो प्रकार का आलू होता है—एक देसी दूसरा पहाड़ी। दोनो की खेती एक समान होती है। केवल बोने के समय में अंतर है। देसी आलू कुँवार में और पहाड़ी पूस-माह में बोया जाता है।

आलू के लिये दुमट पृथ्वी सबसे अधिक उपयोगी होती है। पहले खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए, कम-से-कम ८-९ इंच तक। उसके बाद लगातार १०-१२ जुताई कर देनी चाहिए। यदि खाद डालना हो, तो इसी समय दे देनी चाहिए। बरहे पहले ही बना लेने चाहिए। २०-२२ फ़ीट की दूरी पर बरहे बनाने चाहिए। बीज का आलू ताज़ा न होकर कम-से-कम दो मास तक का रक्खा हुआ होना चाहिए। आलू काटकर और पूरा, दोनो तरह बोया जाता है। काटकर बोने में लाभ रहता है। इससे पौधा मोटा ताजा उगता है। बीज के आलू जो काट-काटकर बोए जायँ, बड़े-बड़े और साफ़ आँखों के होने चाहिए, और प्रत्येक टुकड़े पर कम-से-कम दो आँखें अवश्य होनी चाहिए। ये ही आँखें उगने लगती हैं। यदि काटकर दो-एक दिन बाद बोना हो, तो टुकड़ों पर चूने की बुरकी देनी चाहिए। खेत में पहले कुदाली से कूँड़ बना लेना चाहिए, और प्रत्येक क़तार की दूसरी से २ फ़ीट की दूरी रखनी चाहिए। कूँड़ में लगभग ९ इंच की दूरी पर आलू रखकर ऊपर से मिट्टी चढ़ानी

चाहिए। जो आलू पूरे बोए जाते हैं, वे छोटे आकार के होते हैं। पर यह देख लेना चाहिए कि उनकी आँखें साबुत हैं या नहीं। बोने के पहले आलुओं को तूतिया के पानी में धो लेना चाहिए। इससे पौधे बीमारी से बचे रहते हैं। बीज की मात्रा स्थान-भेद के अनुसार ८ से १५ मन प्रति एकड़ होती है। पर यू० पी० में ५-६ मन प्रति एकड़ बोया जाता है। पौधे प्रायः १०-१२ दिन में उग आते हैं। जब पौधा ४ इंच ऊँचा हो जाय, तब पानी देना और मिट्टी चढ़ाना चाहिए। प्रत्येक सप्ताह सिंचाई करनी चाहिए, और प्रति पखवारे मिट्टी चढ़ानी चाहिए। आलू के पौधों पर मिट्टी चढ़ाना बहुत आवश्यक है। मिट्टी चढ़ाने के साथ गुड़ाई भी करनी चाहिए। सड़े गोबर की खाद प्रति एकड़ २० गाड़ी अवश्य डालनी चाहिए। कुछ लोग मैले की खाद भी डालते हैं। इससे आलू बड़ा-बड़ा अवश्य निकलता है, पर ज़ायक़ा अच्छा नहीं होता। अंडी और नीम की खली भी उपयोगी होती है। विशेषकर दीमक के स्थान पर नीम की खली अवश्य डालनी चाहिए। ४ मन सुपर फ़ास्फ़ेट और एक मन पुटाश की खाद मिलाकर एक एकड़ आलू के खेत में डालना चाहिए। इसके अतिरिक्त जहाँ जैसी आवश्यकता हो, खाद डालनी चाहिए। कुछ लोग मिट्टी चढ़ाते समय खाद डालते हैं। खाद जब डाली जाय, तब उपयोगी होती है। पर खाद डालकर सिंचाई अवश्य कर देनी

चाहिए, जिससे खाद का प्रभाव पृथ्वी में पहुँच जाय, और उसकी सारी गर्मी निकल जाय। आलू के खेत में पकने तक कम-से-कम १४ बार सिंचाई करनी चाहिए। पौधों में आलू लगने के एक महीने बाद निकाई करनी चाहिए, और समय-समय पर करते रहना चाहिए। फाल्गुन के आरंभ में आलू पकने लगता है। जब पत्तियाँ पीली पड़ जायँ, तब आलू पका हुआ समझना चाहिए। उसके बाद खुरपी से खोद-खोदकर आलू निकालने चाहिए। प्रायः प्रति एकड़ १५० से २५० मन पैदावार होती है। आलू को प्रायः लोग बंद मकानों में भर देते हैं। पर यह काम बड़ी सावधानी का है। भरने के लिये पहले पृथ्वी पर बालू बिछावे—कम-से-कम चार इंच मोटी। उस पर आलू बिछावे। उसके ऊपर फिर दो इंच मोटी बालू की तह बिछावे, फिर आलू बिछावे। इसी प्रकार आलू और बालू की तह लगाकर आलू भरने चाहिए। इस प्रकार आलू कभी नहीं बिगड़ेंगे। यह तो हुई सड़ने से बचाने की तरकीब। परंतु कभी-कभी संचयगृह में फुनगा रोग लग जाता है, जो सारे भांडार को बरबाद कर देता है। इससे बचने का उपाय यह है कि भरने के पहले आलुओं को नीचे लिखे मिश्रण में धो ले, और ख़ूब सुखा लें, तो रोग न होगा। पहले २० सेर पानी को ख़ूब उबालो, फिर उसमें आध सेर साबुन घोल दो, उसके बाद ढाई पाव मिट्टी का तेल डाल दो। बस, घोल तैयार हो गया। कभी-कभी पौधों

में भी रोग लग जाया करता है। उसकी तरकीब तुरंत पानी देना और रोगी पेड़ को उपर्युक्त घोल से धो देना है। यदि कमज़ोर या रोगी आलू बोया जायगा, तो अवश्य बीमारी हो जायगी, अतः बोते समय बीज अवश्य देख लेना चाहिए। हमारा देश आलू की पैदावार के लिये बहुत उपयुक्त है। यदि इसकी पैदावार वैज्ञानिक ढंग से की जाय, तो विशेष उन्नति की संभावना है।

मक्का

मक्का भारतवर्ष की उपयोगी फ़सल है। यह मनुष्य और पशु, दोनो के काम आती है। मक्का का चारा पशु बड़े चाव से खाते हैं। बिहार, उड़ीसा, यू० पी० और पंजाब में इसकी खेती खूब होती है। हमारे देश में दो प्रकार की मक्का बोई जाती है—एक सफ़ेद रंग के दाने की और दूसरी पीले रंग के दाने की। सफ़ेद दानेवाली मक्का को जौनपुरी भी कहते हैं, क्योंकि इसकी खेती जौनपुर-ज़िले में सबसे अधिक होती है। किसान इस मक्का को बेचने के लिये बोते हैं। पीले रंग की मक्का देसी कहलाती है। इसका दाना छोटा और पतला होता है। इसको प्रायः दाना निकालने के लिये बोते हैं। बोने के लिये पृथ्वी दुमट और बालू अधिक, मटियार कम ऐसी मिट्टी चाहिए। सड़े गोबर और पत्तियों की खाद वर्षा के पहले डालकर जोतना चाहिए। प्रति बीघे ६ मन खाद डालनी चाहिए। खेत की जुताई खूब गहरी और भुरभुरी

करनी चाहिए। क़तार बनाकर एक समान दूरी पर पौधे बोए जायँ, तो फ़सल बहुत अच्छी होती है। गाँवों में प्रायः गेहूँ की भाँति पृथ्वी में कूँड़ बनाकर, सी लगाकर बोते हैं। कहीं-कहीं छिटकाकर बोई जाती है, और कहीं-कहीं खुरपी द्वारा खोद-खोदकर बोते हैं, जो बहुत समय ले लेती है।

नीचे की तालिका में मक्का पर भिन्न-भिन्न प्रयोग दिखाए गए हैं—

नं०	क़िस्म	बीज का अंतर	संख्या भुट्टे	तोल भुट्टे	तोल दाने
१	२४२	२×१ फीट	१५४००	३४०० पौंड	२७८०
२	„	२$\frac{1}{2}$×१ „	१६२८०	३७०० „	३००५
३	„	३×१ „	१२८८०	३४३० „	२७३०
४	„	३$\frac{1}{2}$×१ „	११६००	२८०० „	२२८०
५	„	३×१$\frac{1}{4}$ „	९४००	२२३० „	१८००
६	„	३$\frac{1}{3}$×१$\frac{1}{4}$ „	८५००	२१४० „	१६९५
७	बड़ी पीली	२$\frac{1}{2}$×१ „	२००००	२५८० „	२११०
८	„	२×१ „	१५७००	१९४० „	१६२०
९	१६०	२$\frac{1}{2}$×१ „	१२१००	१९३६ „	१५८५
१०	५७७	३×१ „	१०६८६	१६१० „	१३१६

इस तालिका से यह निष्कर्ष निकला कि बड़ी पीली देसी मक्का २$\frac{1}{2}$×१ के फ़ासले पर और अन्य क़िस्म का मक्का १$\frac{1}{2}$ के अंतर से बोनी चाहिए।

हों, पेड़ कटवा लेने चाहिए। यह चारा जानवर बहुत पसंद करते हैं। चारा बड़ी सावधानी से रक्खा जाता है। पहले एक गड्ढा खूब लंबा-चौड़ा खोदे, और उसका तल पुख़्ता बना ले। फिर उसकी तह में पुआल बिछाकर चारा रखना चाहिए। प्रत्येक गड्ढे की तह पर नमक छिड़क देना चाहिए। इस तरह ऊपर तक भरकर, गड्ढे को पुआल डालकर छोड़ देना चाहिए। इस तरह रक्खा हुआ चारा कई महीने तक हरा बना रहता है, और स्वाद नहीं बिगड़ने पाता। पर गड्ढे को सीलन से बचाना चाहिए।

जो ज्वार अनाज के लिये बोते हैं, उसके भुट्टे जब पक जाते हैं, तब हँसिया से काट लेते और गेहूँ की भाँति बैलों को चलाकर दाना निकाल लेते हैं। गाँवों में कच्ची ज्वार को भूनकर कूट लेते हैं। इसे मुरकी कहते हैं। यह खाने में बहुत स्वादिष्ठ होती है। पकी ज्वार को भूनकर फूला बनाते हैं, जो बाज़ारों में बिका करते हैं। औसतन् प्रति बीघा १½ या दो मन ज्वार होती है। ज्वार की खेती बहुत सरल और कम समय की है। यदि इसे वैज्ञानिक ढग से किया जाय, तो चारे और अनाज, दोनो की वृद्धि हो सकती है।

जौ

चावल की भाँति जौ भी हिंदू-धर्मशास्त्रों में वर्णित पवित्र अन्न है। पूजा आदि में सर्वत्र इसका प्रचार है। यह भारत-

वर्ष में सर्वत्र बोया जाता है, और सब तरह की पृथ्वी में इसकी पैदावार हो सकती है। यू० पी०, बिहार और सी० पी० में यह अधिक बोया जाता है। इसका सींकुर सीधा और कड़ा होता है, और बाली में दाने क़तारों में लगते हैं। इसे प्रायः चने या मटर के साथ मिलाकर बोते हैं। परंतु अधिक बालूवाली पृथ्वी में यह अकेला ही बोया जाता है। इसकी रोटी गेहूँ से अधिक लाभदायक होती है, ऐसा बहुत-से डॉक्टरों का मत है। खाने के लिये इसे तैयार करना पड़ता है। पहले जौ साफ़ किए जाते हैं, फिर उन्हें मिट्टी की बड़ी नाँद में भिगो देते हैं। रात-भर भीगने के बाद इसे धान की भाँति गाली में मूसरों से ख़ूब कूटते हैं, यहाँ तक कि उसकी सब भूसी अलग हो जाती और चिकना दाना रह जाता है। इसे सुखा लेते और फिर पिसवाकर आटा निकाल लेते हैं। यह आटा ठंडा, बलवर्द्धक और जल्दी हज़म हो जानेवाला होता है। गाँवों में लोग इसे चना और गेहूँ मिलाकर खाते हैं।

गवर्नमेंट की प्रयोगशालाओं में इसकी भी कई जातियाँ निकाली गई हैं, जिनमें नं० पी० २५१ और पी० २५५ अधिक प्रसिद्ध हैं, और इनकी पैदावार देसी जौ से कहीं अधिक होती है।

इसके लिये पृथ्वी अधिक नहीं जोतते, केवल ३-४ बार जोत देते हैं। खेत में खाद भी नहीं डालते और न सिचाई

ही करते हैं। यह बेचारा इतना कम ध्यान दिए जाने पर भी ख़ूब होता है। जौ के खेतों में भी गेहूँ की भाँति खाद डाली और सिंचाई की जाय, तो इसकी उपज कई गुना बढ़ सकती है। यह गेहूँ के पहले ही बोया जाता है, और होली तक पकने लगता है। होली में पके जौ की बालियाँ तोड़-तोड़कर फेंकी जाती हैं। बोने में १।। मन प्रति एकड़ डाला जाता है, और पैदावार १५ से २० मन प्रति एकड़ होती है।

जौ को कंडुआ ख़ूब लगता है। पूरी बाली के दाने न-मालूम क्या हो जाते हैं, उनके स्थान पर काला-काला भुर-भुरा पदार्थ भर जाता है। कंडुआवाले पौधे जला देने चाहिए। यही इसके रोकने का उपाय है। जौ की खेती सबसे सरल है। पर किसान इसकी पैदावार की ओर समुचित ध्यान नहीं देते, नहीं तो इसकी पैदावार कई गुना बढ़ सकती है।

चना

चना बहुत बलदायक अन्न है। उत्तरी भारत में, विशेषकर पंजाब और यू० पी० में, लोग इसे बड़े शौक़ से खाते और इससे बड़ी स्वादिष्ठ मिठाइयाँ, जैसे लड्डू आदि, बनाते हैं। इन्हीं दो प्रांतों में इसकी खेती विशेष रूप से होती है। कानपुर-कृषि-कॉलेज ने इसका प्रयोग करके इसकी कई अच्छी जातियाँ निकाली हैं, जिनकी पैदावार देसी की अपेक्षा

दूनी होती है, और दाने भी बड़े होते हैं। उन्नतिशील जातियों में नं० पी० २५, पी० ५८, पी० १८ और अलीगढ़ यलो फ़्लीवर (yellow fleevr) अधिक प्रसिद्ध हैं। देसी चनों में लाल, पीले, काले, सफ़ेद, जिसे काबुली भी कहते है, विशेष रूप से बोए जाते हैं। चने का साग दाँतों के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसे नमक के साथ कच्चा ही खाना चाहिए। प्रातःकाल ओस पड़ा हुआ साग ओस के साथ ही नमक के साथ खाने से दाँत बिलकुल साफ़, रोग-रहित हो जाते हैं, और पायरिया की तो यह रामबाण ओषधि है। गाँवों में चने का साग पकाकर रोटी-चावल के साथ खाते हैं। कहते हैं, चने के पौधे का साग खोंट लेने से पौधे खूब बढ़ते हैं। पर जब पौधा पूरा बढ़ जाय, तब साग नहीं तोड़ना चाहिए।

चना मटियार और दुमट पृथ्वी में गेहूँ की भाँति उत्पन्न होता है। इसे भी किसान जौ की तरह लापरवाही से बोते हैं। गाँवों में धनखर खेतों में इसे बोते हैं, अर्थात् धान काटकर उसी खेत में चना बो देते हैं। खेत को मुश्किल से दो बार जोतते होंगे, नहीं तो एक बार जोतकर बीज छिटका देते और ऊपर से पटेला फेर देते हैं। बस, चना बो गया, फिर न उसमें पानी देंगे, और न खाद डालेंगे। भगवान् की कृपा से इतना उपेक्षित होने पर भी चना प्रति एकड़ गेहूँ से अधिक ही पैदा होता है। बोते समय खेत में

दस-दस, पंद्रह-पंद्रह सेर के ढेले पड़े रहते हैं, और उन्हीं ढेलों में चना बो देते हैं।

यदि चने का खेत कम-से-कम चार बार जोत दिया जाय, थोड़ी-सी खाद भी जोतते समय डाल दी जाय, और गेहूँ के साथ चने की भी एक बार सिंचाई कर दी जाय, तो अवश्य ही चने की पैदावार दूनी हो जायगी। यह प्रयोग करके देख लिया गया है। पर हमारे किसान बाबा आदम के समय के नियम और क़ानून ही पालन करेंगे। चाहे पानी न बरसने से चने का खेत सूख जाय, पर चने के खेत में पानी न देंगे, और पड़ोस के गेहूँ के खेत सींच देंगे। और, जब खेत सूख जायगा, तो अपने भाग्य और ईश्वर को दोष देंगे।

चने को पाले से हानि होती है। यदि पानी की एक बूँद पड़कर वर्षा रुक जाय, तो चने को बहुत हानि होती है। अलसी और अरहर के फूल, आम का बौर और चने का फूल, ये सब चिपचिपा जाते हैं, और सबकी फ़सल मारी जाती है। यदि गहरी वर्षा हो जाय, जिससे सारा पौधा धुल जाय, तो फ़सल अच्छी होती है। पाला कभी-कभी घना पड़ जाता है। इससे चने का फूल जल जाता है। एक प्रकार का कीड़ा भी चने को लग जाता है। पर वह जिस पेड़ को लगता है, उसी को हानि पहुँचा सकता है, पड़ोस-वाले पे को कोई हानि नहीं पहुँचती। क्योंकि चने के पेड़ में बीमारी से लड़ने की काफ़ी शक्ति होती है।

यदि चने की खेती की ओर समुचित ध्यान दिया जाय, और उन्नतिशील बीज बोकर सावधानी रक्खी जाय, तो थोड़ी ही पृथ्वी में काम-भर को पैदावार हो सकती है। चैत के महीने में इसकी कटाई शुरू हो जाती है। इसे काट-काटकर, गट्ठे बाँधकर एक स्थान पर जमा करते हैं, फिर ऊपर से बैल चलाकर सारा दाना निकाल लेते हैं। इसके भूसे को लोना कहते हैं, जिसे जानवर बड़े चाव से खाते हैं। चने का दाना बैलों और घोड़ों को ख़ूब ताक़त पहुँचाता है। गाँवों में इसकी दाल बनाते और गेहूँ के साथ मिलाकर तथा बेझर की रोटी बनाकर खाते हैं।

अरहर

अरहर की दाल बनती है, और प्रायः पूरे भारतवर्ष-भर में बोई जाती है। यह सब प्रकार की पृथ्वो में हो सकती है। इसे पानी की भी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके पकने के लिये पूरा एक साल चाहिए। यह ज्वार के साथ बोई जाती और गेहूँ-चने के साथ काटी जाती है। इसकी बहुत-सी क़िस्में होती हैं। यू० पी० में तोर, अर्हा और अगहनी, तीन क़िस्में अधिक बोई जातो हैं। अर्ही भी बोते हैं, जिसका दाना छोटा और कुछ काला होता है। कानपुरी अरहर का दाना बहुत बड़ा होता है। उसकी दाल भी जल्द पक जाती और स्वादिष्ठ भी अधिक होती है।

अरहर के खेत में दो-तीन जुताई करके ज्वार, बाजरा,

कपास या तिल के साथ इसे बोते हैं। क्योंकि ये चीजें पहले पक जाती हैं। इनको काट लेते हैं, और अरहर खड़ी रहने देते हैं, जो साल-भर में पकती है। कहीं-कहीं इसे ईख के खेत के चारो ओर बो देते हैं, जिससे खेत के चारो ओर बाड़ा-सा बन जाता है। यदि मिलाकर बोएँ, तो २ सेर प्रति-एकड़ और अकेली ६ सेर प्रति एकड़ बीज डालना चाहिए। अरहर का पेड़ ज्वार और ईख के बराबर ऊँचा होता है, और उसमें शाखें भी निकलती हैं। कोई-कोई अरहर का पौधा तो अमरूद और नारंगी के पेड़ के बराबर हो जाता है, इसलिये अरहर को कम-से-कम तीन-चार फ़ीट की दूरी पर बोना चाहिए। यदि कूँड़ करके बोई जाय, तो अधिक अच्छा रहता है। छिटककर बोने से कहीं घने और कहीं बहुत बिगरे पौधे उगते हैं। अरहर को दाल के लिये विशेष प्रकार से तैयार किया जाता है। पहले अरहर को पानी में भिगोते हैं, जिससे उसकी सारी गर्मी निकल जाय। फिर धीरे-धीरे छाया में सुखाते हैं। जब कुछ नमी शेष रह जाती है, तो भुर्जी के भाड़ में भुनवाते हैं। कुछ औरतें अपने ही घरों में भून लेती हैं। पहले चूल्हे को कंडों से भर देती हैं। जब कंडे खूब जलकर अंगार बन जाते हैं, और चूल्हे को खूब लाल बना देते हैं, तब आग निकाल लेते हैं, और उसी गर्म चूल्हे में अरहर डाल देते हैं, और करछुल से खूब चलाते रहते हैं। इससे अरहर अच्छी तरह भुन जाती

और पवित्रता भी बनी रहती है। फिर उसको चक्की में दलकर दाल बना लेते हैं। यह दाल खाने में स्वादिष्ठ होती और बहुत जल्द पक जाती है।

जब अरहर पक जाती है, तब उसे हँसिया से काटकर एक स्थान पर जमा करते और फिर मुँगरी या डंडे से कूट-कूटकर दाना निकाल लेते हैं। भूसा जानवर खूब खाते हैं, और पेड़ जलाने और छप्पर छाने के काम आता है। कहीं-कहीं अरहर की रोटी भी बनती है। कभी-कभी तो अरहर की ही दाल और रोटी दोनो बनाते हैं, और उसी को चूल्हे में भी जलाते हैं। तभी तो गाँवों में स्त्रियाँ कहा करती हैं—

"मेरी रोटी, मेरी दाल ;
मैं ही दी चूल्हे में बाल ।"

बाजरा

बाजरे का भी ज्वार की तरह प्रयोग होता है। ज्वार से इसका दाना छोटा होता है। इसकी रोटी और भुनवाकर लया भी खाते हैं। बाजरे की रोटी बनाना साधारण काम नहीं। इसमें लस ज़रा भी नहीं होता। इसका आटा यदि गूँधकर रख दिया जाय, तो रोटी बन ही नहीं सकती। अतः औरतें जब इसकी रोटी बनाती हैं, तो इसे ताज़ा पिसवाकर, एक रोटी-भर का आटा गूँधकर फ़ौरन् रोटी

सेक लेती हैं, तब दूसरी रोटी-भर का आटा गूँधती और रोटी बना लेती हैं। इसी तरह एक-एक रोटी का आटा गूँध-कर रोटी बनानी पड़ती है।

इसके लिये पृथ्वी ज्वार के समान ही चाहिए। यह ज्वार के समान ही खरीफ़ की फ़सल के साथ बोया जाता और साथ ही काटा जाता है। गाँव में ज्वार-बाजरा एक साथ ही बोते हैं। इसका कारण यह है कि ज्वार-बाजरे की खेती का ढंग और प्रयोग, सब समान है।

उर्द

उर्द दालों में एक प्रधान दाल है। इसका प्रयोग भारतवर्ष-भर में होता है। यह खरीफ़ की फ़सल है, और ज्वार के साथ बोई जाती है। इसकी कई क़िस्में हैं। गवर्नमेंट की प्रयोगशालाओं में इसकी कई उन्नतिशील जातियाँ आवि-ष्कृत की गई हैं, जिनको बोने से दूनी फ़सल होती है। देसी उर्द की कई जातियाँ हैं, जिनमें हरा और काला, ये दो प्रधान हैं। काला उर्द हरे से अधिक लाभदायक होता है। पंजाब और पश्चिमी यू० पी० में काले उर्द का प्रयोग अधिक होता है, और पूर्वीय प्रांतों में हरे उर्द का।

उर्द के लिये खेत की दो-तीन जुताइयाँ की जाती हैं। यह दुमट पृथ्वी में ख़ूब होता है। जानवरों के लिये उर्द के हरे पौधों और हरी करबी का चारा बहुत लाभदायक होता है, इसलिये किसान इसे ज्वार के साथ बोते हैं। यदि जानवरों

को खिलाना पड़े, तो हरा ही चारे के साथ काट लेते हैं। यदि अनाज पैदा करना हुआ, तो उर्द की फलियाँ पकने पर तोड़ लेते हैं, शेष पेड़ चारे के साथ खाँदकर बैलों को डाल देते हैं।

उर्द की इमिरती आदि मिठाइयाँ, बड़े, पकौड़े तथा अन्य खाने-पीने की वस्तुएँ बनाई जाती हैं। यह चार महीने में पक जाता है। छोटा उर्द उर्दी कहलाता है, जो दो ही महीने में पक जाता है। इसकी खेती यदि ठीक से, नवीन पद्धति के अनुसार, की जाय, तो चौगुनी फ़सल हो सकती है। उर्द के समान ही मसूर, मटर और मूँग भी दालों में ही प्रयोग की जाती हैं। मटर को जौ के साथ बोते हैं। पर मसूर और मूँग खरीफ़ की फ़सलें हैं, जो उर्द के साथ ही बोई जाती हैं, और इन तीनो की खेती भी एक ही तरह की जाती है। इसको एक-सी ही पृथ्वी, जल-वायु और खाद चाहिए।

सन

किसानों के लिये सन बहुत उपयोगी है। इसके रेशे से रस्सियाँ, बान, डोर, जानवरों को बाँधने का गरिश्रायाँ और नाथ आदि सैकड़ों उपयोगी वस्तुएँ बनाई जाती हैं। इसकी रस्सी मूँज की रस्सी से कहीं अधिक मजबूत, नरम और मुलायम होती है। इसकी खेती का दूसरा उपयोग भी होता है। पहले इसको बो देते हैं। जब पौधे एक फ़ुट ऊँचे हो जाते हैं, तब हल चलाकर जोत देते हैं। इससे पौधे ज़मीन में ही

मिलकर सड़ जाते हैं। यह बहुत ज़ोरदार खाद बन जाती है, जो ईख आदि के लिये बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है।

इसके लिये हलकी दुमट पृथ्वी चाहिए। दो-तीन जुताइयाँ पर्याप्त होती हैं। बीज छिटककर बोते हैं। पौधे १०० के १०० भी जम आते हैं, और यह ख़ूब बढ़ती है। इसके खेत में लंबे-से-लंबा बैल भी आसानी से छिप सकता है। इसे खाद देने की ज़रूरत नहीं पड़ती। प्रायः बीस सेर बीज १ एकड़ के लिये पर्याप्त होता है। इसे भी ज्वार के साथ ही बोते हैं। यह खरीफ़ की फ़सल है। परंतु यदि खाद के लिये बोना हो, तो कुछ पहले बोना चाहिए।

जब पौधा पूरा बढ़कर कड़ा हो जाय, इसकी फलियाँ, जिन्हें पदबिछुआ कहते हैं, सूखकर बोलने लगें, तब इसे काटना चाहिए। पदबिछुआ इसलिये कहते हैं कि इनकी आकृति बिलकुल स्त्रियों के बिछुओं की तरह होती है, और छोटी-छोटी लड़कियाँ खेल में इनके बिछिया बनाकर पैरों में पहना करती हैं। जब पहनकर चलती हैं, तो बड़ी मीठी छन-छन की आवाज़ आती है। पहले पदबिछुआ काटकर फिर पेड़ों को काटना चाहिए। काटकर गट्ठे बना लेते हैं। फिर इन गट्ठों को किसी तालाब में गड्ढा करके गाड़ देते हैं। जब आठ-दस रोज़ में ऊपर की छाल सड़ जाती है, तब निकालकर, धोबी के कपड़ों की तरह उठा-उठाकर पानी में मारते हैं। इस तरह रेशे साफ़ और सफ़ेद निकल आते हैं।

उसके बाद इन गट्ठों को धूप में सुखाते हैं। सूखने के बाद पेड़ों से रेशे अलग कर लेते हैं। इन्हीं को सनई कहते हैं, जिसे ढेरों के द्वारा कातकर पतली रस्सियाँ बनाई जाती हैं। बीजों को भिगोकर जानवरों को खिलाते हैं। रेशे निकाल लेने पर जो सिरकी रह जाती हैं, उन्हें जलाते हैं। सिरकी बड़ी जल्दी आग पकड़ती है। एक ही दियासलाई से अलग-अलग बीस सिरकियाँ जलाई जाती हैं। दीवाली के अवसर पर लड़के सिरकियों की अलैया-बलैया बाँधकर जलाते और गाँव के बाहर फेक आते हैं।

सरसों

सरसों की खेती भारतवर्ष में सब जगह होती है। यही एक ऐसी पैदावार है, जिसकी माँग विदेशों में सबसे अधिक है। इसके तेल को कड़ुआ तेल कहते हैं, जिससे मोमजामा और सैकड़ों प्रकार की चमकीली और बहुमूल्य वार्निशें बनाई जाती हैं। हमारे देश में इसका प्रयोग केवल तरकारी भूनने और कभी-कभी जलाने में होता है। यदि इसका प्रयोग उत्तम दस्तकारियों और कला-कौशल की वस्तुएँ बनाने में होने लगे, तो भारतवर्ष को बहुत लाभ हो।

इसकी मुख्य दो जातियाँ हैं—काली और पीली। पीली में तेल अधिक निकलता है, और इसकी खली भी लाभदायक होती है। इसके लिये पृथ्वी गेहूँ के समान तैयार करना चाहिए। यह प्रायः गेहूँ में मिलाकर बोई जाती है। पर गेहूँ

के पकने से एक महीना पहले पक जाती है। तब इसके पौधों को खेत में घुसकर उखाड़ लाते हैं, और एक स्थान पर जमा करके डंडों और मुँगरी से कूटकर दाने निकाल लेते हैं।

गाँवों में तेलियों की अलग क़ौम होती है, जिनका पेशा सरसों, अलसी और तिल्ली का तेल निकालना और बेचना होता है। गाँवों में स्त्रियाँ तेलियों को सरसों देकर तेल पेरवा लेती हैं। यदि तेली को ६ सेर सरसों दी जाय, तो वह २ सेर तेल (तिहाई) देगा, और पिराई के लिये दो सेर कोई अनाज लेगा। प्रायः धान और जौ दिए जाते हैं। और, खली जितनी निकलेगी, सब तेली ले लेगा। इस प्रथा से तेलियों को बहुत लाभ होता है। परंतु अब जगह-जगह तेल पेरने के कोल्हू लग गए हैं, जिनमें अपनी सरसों पेरवा सकते हैं। पेरने का मूल्य देकर तेल और खली घर ले आते हैं। इससे किसानों को बहुत लाभ रहता है। खली जानवरों के लिये बहुत लाभदायक होती है। गाय-भैंस को खिलाने से दूध अधिक बढ़ जाता है। जानवर खली की ख़ुशबू पाते ही चारे पर टूट पड़ते और चट कर जाते हैं। पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि किसान इसकी खेती बड़ी असावधानी से करते हैं। यदि उन्नतिशील बीज वैज्ञानिक ढंग पर बोए जायँ, तो उपज दूनी अवश्य हो सकती है। जब इसका पौधा हरा होता है, तब उसका साग बड़ा मज़ेदार होता है। लोग मूली के साग की तरह तेल में भूनकर बनाते और सेरों खा जाते हैं।

अलसी और तिल

अलसी और तिल भी तेल निकालने के काम आते हैं। ये दोनो भी भारतवर्ष में ख़ूब होते हैं। अलसी को चने के साथ बोते और साथ ही काटते हैं। इसके लिये मिट्टी और खाद आदि चने के समान ही चाहिए। इसका तेल जलाने और पूड़ियाँ बनाने के काम आता है। खली जानवरों को खिलाने के काम आती है। एक प्रकार की उन्नतिशील अलसी होती है, जिसकी छाल से बड़ा बढ़िया 'लिनन' नाम का कपड़ा बुना जाता है। हमारे देश में इस प्रकार की अलसी का प्रचार अभी नहीं है। किसान यों ही, प्रथानुसार, चनों में थोड़ी-सी अलसी मिलाकर बो देते हैं। यदि हो गई, तो अच्छी बात है, नहीं तो इसकी कोई परवा नहीं करता। पर यह विना परवा किए हुए भी ख़ूब होती है।

तिल ख़रीफ़ की फ़सल है। इसे ज्वार-बाजरे के साथ बोते और साथ ही काटते हैं। इसके तेल को मीठा तेल कहते हैं, जो सैकड़ों कामों में प्रयोग किया जाता है। तिल्ली के तेल से हज़ारों प्रकार के सिर में डालने के तेल तैयार किए जाते हैं। ख़ाली धुली हुई तिल्ली का तेल बालों को बढ़ाता और सिर को ठंडा रखता है। वार्निशें, जूते की पॉलिश और क्रीम आदि पदार्थ इसके तेल से तैयार होते हैं। ख़ुशबूदार साबुन तिल्ली के तेल से ही तैयार होते हैं। तिल का हवन आदि पूजा के कार्यों में भी बहुत उपयोग होता है।

तिल मटियार ज़मीन में नहीं होते। इसके लिये दुमट और हलकी दुमट ज़मीन चाहिए। इसे सिंचाई की भी आवश्यकता नहीं। इसके पौधे को कोई रोग भी नहीं सताता, क्योंकि वह काफ़ी मज़बूत होता है। तिलों की दो प्रधान जातियाँ हैं—काली और सफ़ेद। काले तिलों का तेल अधिक लाभदायक होता है।

प्रयोग करके देखा गया है कि तिल को यदि अकेला बोया जाय, तो फ़सल अच्छी होती है, दाना मोटा और भरा हुआ उत्पन्न होता है। पर हमारे किसानों को ऐसी लत पड़ गई है कि जब कभी कोई चीज़ बोएँगे, तो उसमें दूसरी चीज़ ज़रूर मिला देंगे। इससे दोनो की पैदावार घट जाती है। कभी-कभी तो चार-चार और पाँच-पाँच अनाज एक साथ मिलाकर बोए जाते हैं, जैसे ज्वार, तिल, उर्द और अरहर या रौंसा (लोभिया)।

जब तिल्ली की फली पक जाती है, तब पेड़ों को काटकर एक स्थान पर जमा करते और कूटकर तिल निकालते हैं।

शकरक़ंद

शकरक़ंद आलू की तरह जड़ में पैदा होती है। यह भारत-वर्ष में सब जगह होती है। कहते हैं, यह पहले पहल यहाँ अमेरिका से आई थी। आलू की भाँति इसका उपयोग भी भिन्न-भिन्न वस्तुओं में होता है। इसका स्वाद मीठा होता

है, इसी कारण अँगरेज़ी में इसे 'स्वीटपोटैटो' अर्थात् मीठा आलू कहते हैं।

इसकी दो मुख्य जातियाँ होती हैं—सफ़ेद और लाल। यह दुमट मिट्टी में, जिसमें बालू की मात्रा अधिक हो, ख़ूब पैदा होती है। इसका पौधा बेलों की तरह पृथ्वी पर फैलता है, जैसे ककड़ी और कद्दू का। इसे बरसात में बोते हैं। खाद अवश्य डालनी चाहिए। कम-से-कम २० लढ़ी खाद प्रति एकड़ डालनी चाहिए, और १५-२० बार खेत जोतना चाहिए। बरसात शुरू होते ही मिट्टी की मेंड़ें बना देनी चाहिए। इससे जड़ें फैलने में सुविधा रहती है। इसके लगाने में या तो लताओं की कलमें ली जाती हैं, या शकरक़ंद से निकले हुए अँखुए लिए जाते हैं। लताएँ यदि १२ इंच लंबी हों, तो ६ इंच पृथ्वी के अंदर गड़ी रहें, और आधी मिट्टी से ढक देनी चाहिए। अँखुए लगाने के लिये शकरक़ंद ८ इंच गहरी गाड़नी चाहिए, और २ इंच की दूरी पर, उपजाऊ भूमि में, लगानी चाहिए। बीज प्रति एकड़ २० मन पड़ता है। पहले फूल गोभी की तरह पौधे तैयार करने चाहिए। एक लाइन की दूसरी लाइन से डेढ़ फ़ीट की दूरी रखनी चाहिए।

बोने के कई हफ़्ते बाद अँखुए निकलते हैं, जिनको काट-कर कलमें लगाई जाती हैं। अँखुए से शकरक़ंद अच्छी लगती है। जब अच्छी तरह लग जाय, तब सिंचाई करनी चाहिए। सिंचाई बीच-बीच में करते रहना चाहिए, और जब

तक जमीन ढक न जाय, निराई करते रहना चाहिए। इसे पाले का अधिक भय रहता है। इससे बचने के लिये इसे घास या चटाइयों से ढक देना चाहिए। रोपनेवाली लताओं की तो अवश्य रक्षा करनी चाहिए।

कभी-कभी बेलों में कीड़े भी लग जाते हैं। ये कीड़े ½ इंच लंबे होते हैं, और पत्तियों को चाट डालते हैं। इनसे बचने का उपाय यह है कि कीड़े-लगे पत्ते तोड़कर जला दे। यदि अधिक लगे हों, तो पौधे को उखाड़कर जला देना चाहिए। जिन खेतों में कीड़ा लग जाय, उनमें दूसरी वर्ष शकरक़द कभी न बोए।

जब शकरक़ंद के पत्ते पीले पड़ने लगें, तब समझ लो कि फ़सल खोदने का समय हो गया। आलू की भाँति खुरपी से खोदना चाहिए। और, यदि शकरक़ंद को सुरक्षित रखना हो, तो आलू की भाँति सावधानी से रखना चाहिए। यह प्रायः २०० मन प्रति एकड़ पैदा होती है। जाड़े की ऋतु में ग़रीब आदमी आलू और शकरक़ंद ही खाकर रह जाते हैं।

मूँगफली

हमारे देश में मूँगफली का काफ़ी प्रचार है। लोग जेबों में डालकर बड़े चाव से टहलते हुए खाते जाते हैं। यह पहले ब्राजील में होती थी। लगभग १०० वर्ष हुए, तब से भारत-वर्ष में इसका प्रचार हुआ। यह गर्म देशों में ही पैदा होती

हैं। इसके लिये उपजाऊ दुमट और साधारण मटियार या काली मिट्टी अच्छी समझी जाती है। यह बरसात के पहले जेठ में बोई जाती है। यदि ज़मीन कड़ी हो, तो ६-७ बार जोतकर और पटेला फेरकर मुलायम कर लेनी चाहिए। जुताई गेहूँ और ईख की भाँति खूब गहरी हो। इसके लिये खाद भी आवश्यक है। सबसे अच्छी खाद सड़े हुए गोबर की है, जिसे डालकर तीन-चार बार जोत देना चाहिए। एक एकड़ में १५-२० गाड़ी खाद अवश्य डालनी चाहिए। यदि भेड़-बकरी की मेंगनी, हड्डी का चूरा, शोरा या चूना मिल सके, तो अति उत्तम है। बीज बोने के पहले छिलके अलग कर लेने चाहिए। बीज बोने के लिये क्यारियाँ, कूँड़ या नालियाँ बना लेनी चाहिए। इसे बोने के लिये १½ इंच चौड़ी खुरपी का प्रयोग किया जाय, जिससे बोने में सरलता रहे। बीज ७ या ८ इंच गहरा रखना चाहिए, और क़तारों की दूरी १½ फ़ीट होनी चाहिए। बोते समय यदि एक चम्मच हड्डी का चूरा और एक चम्मच नमक डालते जायँ, तो उत्तम खाद हो जाती है, और स्वस्थ पौधे शीघ्र उगते हैं। समय-समय पर पौधों की निकाई और गुड़ाई करते और आलू की भाँति मिट्टी चढ़ाते रहना चाहिए। इसमें असावधानी करने से फ़सल कमज़ोर हो जाती है। यदि बरसात समय पर होती रहे, तो पानी देने की आवश्यकता नहीं, नहीं तो इसे ५-६ बार पानी देना पड़ता है। पहले तो बीज बोने के पहले

ही पानी दे देना चाहिए। यदि अंकुर देर में निकलें, तो एक हलका पानी देना चाहिए। जब फूल और फल निकलने लगें, तब अच्छा पानी लगाना चाहिए, और जब मूँगफली पकने लगें, तब भी एक पानी लगाना चाहिए, जिसमें खोदने में सुगमता हो। जब पौधा पीला पड़ने लगे, तब समझना चाहिए कि फ़सल पक गई। इसके पहले न काटना चाहिए।

कच्ची मूँगफली खाने में सोंधी नहीं होती। इसे बाज़ार में बेचने के लिये बालू में भुनवा लेते हैं, तब बेचते हैं। इसके भूनने में सावधानी रखनी चाहिए, कम या अधिक भुन जाने से ज़ायक़ा बिगड़ जाता है। यदि मूँगफली को सुरक्षित रखना हो, तो बालू में मिलाकर रखना चाहिए, क्योंकि इसमें कई रोग लग जाते हैं। जिस पौधे की पत्तियों में काली या पीली लकीरें पड़ जायँ, उसे उखाड़ डालना चाहिए। और, पकी हुई मूँगफलियाँ ख़ाली कभी न रक्खी जायँ, वरन् बालू में मिलाकर रखनी चाहिए।

तंबाकू

तंबाकू का प्रायः सारे संसार में ख़ूब प्रचार है। यह खाई भी जाती और पी भी जाती है। गर्म और ठंडे, दोनो प्रकार के देशों में इसका समान व्यवहार किया जाता है। हमारे देश में इसकी खेती १० लाख एकड़ भूमि में होती है, फिर भी पूरा नहीं पड़ता, और कई करोड़ पौंड का माल बाहर से आता है। हमारे देश की अधिकांश तंबाकू यह कहकर बाहर

भेज दी जाती है कि इसकी पत्तियाँ भारी और खुरदरी हैं, और यह उत्तम सिगरेट बनाने के अयोग्य है। सिगरेट बनाने के लिये तंबाकू में ये गुण होने चाहिए—उसका रंग हलका पीला हो, खुशबूदार हो, उसमें लचीलापन हो, जलने में अच्छी हो, और धुएँ में कड़ुआहट न हो। तंबाकू पर गवर्नमेंट की प्रयोगशालाओं ने अनुभव किए हैं, और कई प्रकार की उन्नतिशील जातियों का आविष्कार किया है। पूसा नं० २८ हमारे देश के बिहार-प्रांत, मध्य-भारत, मध्य-प्रदेश, संयुक्त प्रदेश और बंबई में खूब हो सकती है। देशी तंबाकू गाँवों में चिलम में भरकर पीने के काम आती है। इसकी गाँवों में खूब खपत है। खराब तंबाकू की पत्तियाँ और डंडे गाड़ी में डालकर खूब कूटते हैं। फिर उसमें सड़ा हुआ शीरा मिलाकर और कूट देते हैं। यही तंबाकू तैयार है, जो गाँवों में खूब पी जाती है। कहीं-कहीं भरी सभा में बिरादरी के लोग बड़ी शान और ठाट से एक ही हुक्क़े को गुड़गुड़ाते और अपनी चौपालों में भरा हुआ हुक्क़ा लेकर घंटों उसे पीते रहते हैं। बीड़ी और सिगरेट की बढ़िया तंबाकू कुछ तो यहाँ बनती है, कुछ बाहर से आती है। सहारनपुर में गवर्नमेंट का एक बड़ा भारी तंबाकू का कारखाना है, जिसमें सिगरेट तैयार होती है। तंबाकू पान में डालकर और चूने में मिलाकर भी खाई जाती है। यह शुद्ध पत्तियों की तंबाकू बड़े परिश्रम से तैयार होती है।

यह गर्म देश की उपज है। इसके लिये सबसे अच्छी दुमट क्षार-युक्त मिट्टी की आवश्यकता है। इस प्रकार की पृथ्वी में यह अच्छी और लंबे पत्तोंवाली उत्पन्न होती है। मटियार और चिकनी मिट्टी में इसकी पैदावार तो ख़ूब होती है, पर पत्ते मोटे और घटिया क़िस्म के पैदा होते हैं। जिस खेत में यह लगाई जाय, उसे ख़ूब ज़ोरदार होना चाहिए। बहुधा लोग नदियों के किनारे या गाँव के निकट या ऐसे खेत में, जिसमें पहले आम का बाग़ था, बोते हैं। खेत को ख़ूब गहरा और कम-से-कम २० बार जोतना चाहिए। इसे खाद की भी आवश्यकता रहती है। खाद उत्तम प्रकार की हो, जैसे सल्फ़ेट ऑफ़् पुटाश १५० पौंड प्रति एकड़, सुपरफ़ास्फ़ेट ११२ पौंड प्रति एकड़, नाइट्रेट ऑफ़् सोडा २८५ पौंड प्रति एकड़, बिनौले का चूरा और अंडी की खली १ मन ३२ सेर प्रति एकड़। हड्डी का चूरा भी उपयोगी है। सबसे अच्छी खाद सड़े हुए गोबर, पत्तियों और मैले की है। कभी-कभी पेशाब की मिट्टी भी डालते हैं। यदि फ़सल कमज़ोर उगे, तो कैलशियम सल्फ़ेट डालनी चाहिए। तंबाकू को पौद लगाकर बोते हैं। पहले ख़ूब ज़ोरदार मिट्टी में इसे घना बो लेते हैं। जब पौधे पाँच इंच के हो जाते हैं, तब उन्हें खोदकर खेत में लगाते हैं। खेत में पौधे क़तारों में लगाने चाहिए। प्रत्येक पौधे की एक दूसरे से १ फ़ुट की दूरी और प्रत्येक लाइन में तीन

फ़ीट की दूरी होनी चाहिए। पौधे शीघ्र ही जड़ पकड़ लेते हैं। खेत को प्रति पाँचवें दिन सींचना चाहिए, और पतली खुरपी से आवश्यकतानुसार निराई करनी चाहिए। समय-समय पर गहरी गुड़ाई भी करनी चाहिए। पौधों की परवा अधिक रक्खे, और जैसी ज़रूरत देखे, उसी के अनुसार पानी, खाद आदि देते रहना चाहिए। ऊपर की कलियाँ और नीचे के पत्ते तोड़ डालने चाहिए। जब पत्ते पीले पड़ने लगें, तब समझ लो कि फ़सल पक गई। फिर उनको क्रमशः काटना चाहिए। दो घंटे बाद बाँस पर सूखने के लिये डाल देना चाहिए। यदि बढ़िया रंगदार तंबाकू रखना हो, तो कड़ी धूप में कभी न सुखावे, वरन् इस होशियारी के साथ सुखावे कि पत्तों पर धूप और छाया समान पड़े। सिगरेट के लिये पत्तियाँ सुखाने के वास्ते हवादान होते हैं, जिनमें सर्दी-गर्मी ठीक पहुँचाने के लिये कमरे बने होते हैं, जिनमें सुखाने से रंग नहीं बिगड़ता। गाँवों में किसान असावधानी से तंबाकू का रंग बिगाड़ लेते हैं, फलतः उनकी तंबाकू घटिया क़िस्म की मानी जाती है, और उसका दाम भी कम मिलता है। वह प्रायः चूने में मिलाकर खाने के काम में या शीरे में मिलाकर पीने के काम में लाई जाती है।

हमारे देश में तंबाकू ख़ूब हो सकती है, पर परिश्रम अधिक होने के कारण किसान इसे नहीं बोते। यदि नवीन पद्धति से

इसकी खेती की जाय, तो ईख के समान लाभ हो सकता है, क्योंकि तंबाकू की संसार-भर में ख़ूब माँग है।

हल्दी

हल्दी हमारे दैनिक व्यवहार की वस्तु है। इसकी भारतवर्ष-भर में ख़ूब खपत है। इसकी खेती बड़ी सावधानी से की जाती है। शीतल घाटियों और तराई में यह अच्छी तरह उगती है। जिस पृथ्वी पर गन्ना और मक्का हो चुके हों, या जो पृथ्वी आम का बाग़ कट जाने पर जोतने योग्य बना ली गई हो, इसकी खेती के लिये उपयुक्त है। ज़मीन विशेष ताक़तवर होनी चाहिए। इसके लिये जोतने के पहले खेत को पानी से भर देना चाहिए। सूखने पर उसमें लगभग १५० गाड़ियाँ प्रति एकड़ के हिसाब से खाद डाले, फिर गहरी जुताई करे। कम-से-कम २० बार जुताई करनी चाहिए। पृथ्वी ख़ूब पोली और भुरभुरी कर देनी चाहिए, क्योंकि इसकी जड़ें पृथ्वी में १ फ़ुट तक जाती हैं। इसके लिये चिकनी, मटियार और रेतीली मिट्टी अनुपयुक्त है। बिलकुल छाँह में भी यह ख़ूब हो सकती है। खेत चुनते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चाय की भाँति पानी बरसे तो ख़ूब, पर रुके नहीं, बहता हुआ निकल जाय। रुक जाने से जड़ें सड़ जाती हैं। सिंचाई करते समय भी बड़ी सावधानी से काम लिया जाता है। आवश्यकतानुसार इतनी सिंचाई करनी चाहिए

कि पौधे सूखने न पावें। यदि वर्षा ठीक समय पर हो, तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं। जब पौधे उग आवें, तब अंडी की खली की खाद १० मन प्रति एकड़ बारीक पीसकर डालनी चाहिए, और उसमें राख, शोरा, नमकीन मिट्टी की खाद, भेड़-बकरियों की मेंगनी ३ मन प्रति एकड़ के हिसाब से मिला लेनी चाहिए। इस प्रकार दो बार खाद देने से उपज खूब होती है।

हल्दी का कई क़िस्में हैं—देशी, पटने की और बंबई की हल्दी। पटने की हल्दी का रंग अच्छा होता है, पर बंबई की हल्दी सुगंधित और महँगी भी अधिक होती है। देशी हल्दी खाने में अधिक ज़ायक़ेदार और स्वास्थ्यवर्धक होती है। बोने के लिये बड़ी-बड़ी गाँठें चुनकर एकत्र की जाती हैं, और उन्हें छाँह में सुखाया जाता है। ये गाँठें बिना उबाली हुई होती हैं। खाने की हल्दी उबालकर बेची जाती है, पर बीज के लिये अलग छाँटकर पहले से ही रख छोड़ते हैं। गाँठों की आँखों की सावधानी से रक्षा करते हैं, क्योंकि हल्दी की आँखें बहुत जल्दी ख़राब हो जाती हैं, और तब पौधा कभी नहीं उगता। इसलिये इनको अँधेरे कमरे में रखकर ऊपर से पत्तियाँ डाल देते और पानी से छिड़कते हैं, जिससे आँखों में नमी बनी रहे। बने हुए उत्तम खेत में १० फ़ीट वर्ग की क्यारियाँ बना लेनी चाहिए, और प्रत्येक दो क्यारियों के बीच से पानी जाने के लिये बरहा बना लेना चाहिए।

क्यारियों के अंदर १॥ फ़ीट के अंतर पर रस्सी से सीधी लाइनें बना लेनी चाहिए। उन पर आठ-दस अंगुल गहरा निशान बनाकर, हल्दी की गाँठ ४-५ इंच गहरी गाड़कर मिट्टी से दबा देनी चाहिए। बोने का ठीक समय वर्षा के पहले है। किसान रोहिणी नक्षत्र में गाँठें लगाते हैं। यह समय हल्दी के लिये प्राचीन काल से चला आ रहा है। पर अब कभी-कभी उपयुक्त नहीं पड़ता, और किसानों की सारी कमाई व्यर्थ हो जाती है। रोहिणी नक्षत्र में बोने से सिंचाई का बड़ा ध्यान रखना चाहिए। कम या अधिक हो जाने से हानि होने की संभावना रहती है।

पौधों की निराई और गुड़ाई आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए। जब हल्दी बैठने लगती है, तब खेत में सुगंध छा जाती है। यह सुगंध दिन-दिन बढ़ती जाती है, यहाँ तक कि जब हल्दी पक जाती है, तब खेत सुगंध से भर जाता है। पौधों के पत्ते पीले पड़ जाते हैं, और डंडियाँ नीचे झुक जाती हैं। जब पत्ते स्वयं झड़-झड़कर पृथ्वी पर गिरने लगें, तब सिंचाई बंद कर देनी चाहिए, और होशियारी से खुदाई करके गाँठें निकालनी चाहिए। इसके लिये पतली खुरपी का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि आँखों में लग जाने का डर बना रहता है। खोदते समय बीज के लिये बड़ी-बड़ी गाँठें, जिनकी आँखें स्पष्ट हों, अलग टोकरी में रखते जाना चाहिए, शेष को बाज़ार के हवाले कर देना चाहिए।

हल्दी की खेती बड़ी लाभदायक है। यदि यह ठीक ढंग से की जाय, तो काफ़ी आमदनी होती है।

हल्दी उबालने की तरकीब—कड़ाहे में पानी डालकर, भट्ठी में मटके बंद करके बिना पानी डाले हल्दी को बर्तन में पकाना चाहिए। कोई सुहागा तथा चूने के पानी में डुबोकर रख देते हैं। हल्दी का रंग जलने न पावे। कम उबालने पर गाँठें बराबर नहीं बैठतीं। निकम्मी गाँठ मिल जाने से ख़राबी होती है।

गाँठें साफ़ करके, मिट्टी के बर्तन में रखकर, ऊपर से हल्दी के पौधे भरकर मुँह ढक्कन से बंद करें, जिससे भाप न निकलने पावे। मंद-मंद आँच से पकावे। फिर सुखाई जाय। ओस से बचाव हो।

हल्दी की सफ़ाई—सूखने के बाद सफ़ाई की जाय। सीमेंट का ख़ाली पीपा लेकर उसमें पहिया लगाया जाय। घुमाने के लिये हत्था हो। ९ इंच लंबा, ६ इंच चौड़ा द्वार हल्दी भरने के लिये हो। पीपे में हल्दी भर दी जाय, और उसी में कंकड़ तथा ईंटों के रोड़े भी डाले जायँ। पीपे में ६-६ इंच के फ़ासले पर छोटे-छोटे छेद मिट्टी और तंतु निकालने के लिये हों। पीपा दो खंभों में रखकर हैंडिल से घुमाया जाय। कम ख़र्च और अच्छी सफ़ाई की यही तरकीब है।

खेती फ़ी एकड़ ६० या ७० मन हो सकती है। ३० मन फ़ी एकड़ से कम नहीं होती। इस उपज से २५०) की बचत आसानी से हो सकती है।

जीरा

जीरा भी हल्दी के समान बहुत उपयोगी है, जो हमारे दैनिक भोजन में काम आता है। इसका पानी क़ब्ज़ को बहुत लाभ पहुँचाता है। इसकी खेती मोरक्को, तुर्किस्तान और फ़ारस में ख़ूब होती है। हमारे देश में भी यह ख़ूब हो सकता है। किसान और काछी अधिक झंझट के कारण इसे नहीं बोते, पर इसकी खेती से आमदनी ख़ूब होती है। यह छ महीने में तैयार हो जाता है। इसका बीज तैयार करने में पूरा एक महीना लग जाता है। पहले जीरा साफ़ करके एक घड़े में भर-कर उसके ऊपर चार इंच ऊँचा पानी भर देते हैं। तीन दिन रक्खे रहने के बाद जीरे को हाथों से ख़ूब मलते हैं। इस तरह जो अखुए इधर-उधर निकले रहते हैं, वे टूटकर साफ़ हो जाते हैं। तब इसको छाँह में सुखाते हैं। सूखने के बाद तीन दिन तक सूप में फटकते हैं। फिर इस जीरे को दुबारा घड़े में भिगोते और यही क्रिया करते हैं। तीसरी बार फिर इसी क्रिया को करते हैं, तब बीज बोने योग्य होता है। इसको जई कहते हैं। प्रायः १० सेर जीरे में २ सेर जई तैयार होती है, जो ५-७ रुपया प्रति सेर बिकती है।

जीरा प्रायः बलुई दुमट मिट्टी म ख़ूब होता है। मिट्टी की जुताई कम-से-कम ८ इंच गहरी होनी चाहिए। खेत को हल्दी के समान ही शक्तिशाली बनाना चाहिए। इसकी विधि यही है कि पहले खेत में पानी दे कर, फिर १५० मन प्रति एकड़

के हिसाब से सड़े गोबर की खाद देकर जोत देना चाहिए। जुताई ५-६ बार करनी चाहिए। गेहूँ बोने का समय ही इसके बोने का समय है। उतरते कातिक में अवश्य बो देना चाहिए। एक एकड़ के लिये सवा सेर जई पर्याप्त है। बोते समय इसमें दस सेर राख मिला लेनी चाहिए। फिर खेत में हल्के हाथ से बीज छिड़क देना चाहिए, और हल से जोतकर बीज पृथ्वी में मिला देना चाहिए। इसके बाद ५टेला लगा कर बराबर कर देना चाहिए। ३-४ फ़ीट के पौधे होने पर निराई करनी चाहिए। क्यारियाँ बनाकर सिचाई अवश्य करनी चाहिए। ५×३ गज़ का खेल कर १ फ़ुट चौड़ा बरहा बनाकर सिचाई करने से पानी ठीक लग जाता है। प्रत्येक पौधे की एक दूसरे से ६ इंच का अंतर हो। समय-सयम पर पौधों पर राख छिड़कते और निराई करते रहना चाहिए।

दो महीने में ही सुगंध फैलने लगती है। फाल्गुन और चैत तक फ़सल तैयार हो जाती है। उपज प्रायः ४ मन प्रति एकड़ होती है, और ६ मन प्रति एकड़ भूसा भी तैयार होता है। इस प्रकार एक एकड़ में ४×८०=३२० रुपए की आमदनी हुई, क्योंकि जीरा आजकल ८० रुपया मन बिकता है।

जीरे की खेती का वैज्ञानिक सुधार होना चाहिए, क्योंकि यह एक बहुमूल्य उपज है।

तरकारियाँ

गाँवों में काछी या मुराऊ एक जाति होती है, जिसका पेशा तरकारियाँ बोना ही होता है। तरकारियाँ बोने से काफी आमदनी होती है। पर काछी लोग अज्ञानता-वश फ़सल बरबाद कर देते हैं। ऐसी कोई भी फ़सल नहीं होती, जो शत-प्रतिशत उगे, और उसमें तरकारियाँ उत्पन्न हों। कहीं कीड़ा लगा है, तो कहीं पानी नहीं दिया, इसी प्रकार लगा रहता है। साग-भाजी गाँवों के निकट के खेतों में बोनी चाहिए, जिससे रखवाली ठीक ढंग से हो सके। तरकारियाँ हमारे स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव डालती हैं। नीचे कुछ तरकारियों की खेती का वर्णन किया जाता है।

फूल गोभी

इसकी कई जातियाँ होती हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार से बोई जाती हैं। मुख्य देसी और विलायती हैं। देसी में पटने और बनारस का फूल अधिक प्रसिद्ध है। फूल गोभी का काफी प्रचार है, और हमारे देश में इसकी खेती होती भी खूब है। पर अभी इसकी खेती शहरों तक में ही सीमित है। प्रायः उन स्थानों में यह बोया जाता है, जो शहरों के निकट हों, जहाँ से बाजारों में सुगमता के साथ गोभी भेजी जा

सके। कभी-कभी गाँवों में भी काछी लोग बोते हैं। यह बड़ी मजेदार बात है कि गाँव में उत्पन्न हुआ फूल चाहे छोटा ही हो, शहर में उत्पन्न फूल की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ठ और पुष्टिकारक होता है। कुछ लोग इसका कारण यह बतलाते हैं कि शहर में मैला आदि की परिमाण से अधिक खाद डाल देते हैं, जिससे उसका प्रभाव बहुत अधिक पड़ जाता है। अच्छी फ़सल लाने के लिये इसकी खेती में बहुत अधिक खाद डाली जाती है। खेत दुमट और हल्का दुमट होना चाहिए। मिट्टी भुरभुरी होनी चाहिए। यदि भुरभुरी न हो, तो दो-तीन लढ़ी रेत डाल देना चाहिए।

बोने के लिये पहले इसकी पौद तैयार की जाती है। पौदघर ऊँचा, पानी के निकट तथा ताक़तवर भूमि में बनाना चाहिए। पहले उसकी ख़ूब गहरी जुताई करनी चाहिए। यदि भूमि कड़ी प्रतीत हो, तो पहले सींचकर तब जोतना चाहिए। पौदघर में पौधे घने लगाए जाते हैं, और लगातार उनकी देख-रेख की जाती है। जब पौधे तीन-चार इंच लंबे हो जायँ, तब दूसरे खेत में लगाने योग्य हो जाते हैं। जिस खेत में फूल गोभी लगाना हो, उसे ख़ूब गहरा जोतकर और खाद आदि डालकर पहले से ही ताक़तवर बना लेना चाहिए। पौद के पौधे खेत में लगाने के पहले खेत सींच लेना चाहिए, और लगाकर फिर सिंचाई कर देनी चाहिए। इससे पौधे सूखने नहीं पाते और जल्दी ही

जड़ पकड़ लेते हैं। उखाड़ने तथा लगाने का काम उतरती धूप, सायंकाल अथवा बादलों के समय करन चाहिए। एक एकड़ पृथ्वी में एक पाव बीज पड़ता है। बोने का समय जेठ से सावन तक है, परंतु विलायती फूल गोभी कातिक में बोया जाता है। पहाड़ी स्थानों में इसे जाड़े की ऋतु में बोते हैं, और अधिकतर विलायती क़िस्म की बोई जाती है। एक लाइन की दूरी दूसरी से १॥ फ़ीट होनी चाहिए। फ़सल चार महीने में तैयार हो जाती है। खाद ख़ूब डालनी चाहिए। लोना मिट्टी और सोडियम नाइट्रेट भी डालना लाभदायक होता है। फ़सल चार महीने में तैयार हो जाती है। फूल में बहुत-सी बीमारियाँ हो जाती हैं, इसलिये आरंभ से ही सावधान रहे। यदि फूल कुछ पीला दिखाई पड़े, तो उसे बाँध दे, जिससे सूर्य की धूप उस पर न पड़े, तो २ दिन में वह सफ़ेद हो जायगा। बढ़िया फूल सफ़ेद रंग का, बँधा हुआ, चिकना होता है। जिस फूल पर हरे-हरे अँखुए निकल आवें या काले-काले दाग़ हो जायँ, उसे अच्छे फूलों से अलग रखना चाहिए। खेत की सिंचाई प्रायः ७-८ बार की जाती है। २-३ बार निकाई तथा गुड़ाई भी की जाती है। जैसी आवश्यकता देखे, उसी के अनुसार पानी दे, और निकाई-गुड़ाई बराबर कराता रहे। इससे बँधे हुए बढ़िया फूल तैयार होते हैं।

यदि अच्छी तरह खेती की जाय, तो एकड़ में १५०० फूल

उत्पन्न हो सकते हैं, और साधारणतः एक हजार प्रति एकड़ उत्पन्न होते हैं। यदि खड़ी फ़सल में काला कीड़ा लगता हुआ दिखाई पड़े, तो फ़सल शीघ्रता से काट लेनी चाहिए, और तंबाकू की राख, चूना और महीन बालू मिलाकर मिट्टी में छिड़के और पानी दे। इससे बीमारियों के कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

बंद गोभी

बंद गोभी एक लाभदायक पत्तों की तरकारी है, जो वायु-कारक होती है। इसकी दो क़िस्में हैं—एक गोल लड्डू की तरह और दूसरी चपटी। कुछ बंद गोभियाँ जल्दी तैयार हो जाती हैं और कुछ देर में। दोनो जातियाँ हमारे देश में खूब होती हैं। पहली क़िस्म के लिये बलुआ दुमट मिट्टी और दूसरी के लिये दुमट साधारण मटिआर मिट्टी उपयुक्त है। बोने के ११ महीने पहले सड़ा गोबर, और लीद ३०० मन प्रति एकड़ डालनी चाहिए। साथ ही पुआश की खाद, राख और खली की खाद भी मिला देनी चाहिए। इससे गोभियाँ मोटी उत्पन्न होती हैं। मिट्टी और खाद गहराई तक पहुँचा दे, और खूब मिलाकर जोत दे। मिट्टी कभी खुश्क न होने पावे, इसका ध्यान रहे। इसमें पानी बहुत अधिक देना पड़ता है, और गुड़ाई बार-बार कराते रहना चाहिए। बोने का समय भादों से कातिक तक है। पहाड़ों पर गर्मी में बोई जाती है। पूना तथा बंगलौर के ज़िलों में भादों से माघ तक, बोई जाती

है। बीज १ एकड़ के लिये तीन छटाक काफ़ी है। पचास वर्ग फ़ीट क्षेत्रफल की पृथ्वी में १ छटाक बीज की पौद लगावे। जब ५-६ सप्ताह के पौधे हो जायँ, तब उन्हें खेत में लगावे। एक-एक फ़ुट के अंतर पर डेढ़-डेढ़ फ़ीट की पंक्तियों में लगाने से पौधे खूब बढ़ते हैं। मिट्टी लगातार चढ़ाते रहना चाहिए, और खेत को हमेशा तर रक्खे। यदि फ़सल की बाढ़ ठीक न हो रही हो, तो तंबाकू की राख, चूना, महीन बालू और पुटाश मिलाकर, खेत में देकर तब सिंचाई की जाय। इसके बाद खेत गोड़ देना चाहिए।

बंद गोभी का सबसे बड़ा शत्रु उसका कीड़ा है। सफ़ेद बड़ी तितलियाँ, जिनके पाँवों पर काले दाग़ होते हैं, पत्तों को हानि पहुँचाने लगती हैं। वे बहुत जल्दी अंडे रखती हैं। जब पत्तों पर अंडे दिखाई पड़ें, तब उनको इकट्ठा करके जला देना चाहिए। ऊपर लिखा हुआ मिश्रण पौधों पर छिड़कते रहना चाहिए, जब तक कि वे बड़े न हो जायँ, फ़्लैचर साहब का कहना है कि राख में मिट्टी मिलाकर छिड़कना चाहिए। यदि पौधे कम हों, तो हाथ से ही हटा देना चाहिए। २½ या ३ मास में फ़सल तैयार हो जाती है। पैदावार १५० -२५० मन हो सकती है। यदि रखना हो, तो करमकल्ले की जड़ ऊपर करके रखना चाहिए। बीज ठंडे स्थानों पर पहाड़ों पर हो सकते हैं। बढ़ जाने पर फूट जाती हैं, इसलिये पूरी बढ़ जाने पर शीघ्र कटाई शुरू कर देनी चाहिए। इसकी खेती में प्रति एकड़ ७०)

का खर्च होता है, और आमदनी लगभग ३५० रुपया होती है।

गाँठ गोभी

भूमि, खेत और पौद की तैयारी, खाद, सिंचाई, गुड़ाई तथा निकाई, ये सब बातें बंद गोभी के समान होती हैं। जब पौद खेत में लगा दी जाय, तब समय-समय पर निकाई और गुड़ाई करते रहना चाहिए। बीज की मात्रा प्रति एकड़ १ पाव है। बोने का समय श्रावण मास है, पर पहाड़ी जगहों में माघ-फाल्गुन में बोई जाती है। विलायती गाँठ गोभी देसी की अपेक्षा अधिक मोटी और भरी हुई होती है, इसलिये इसी का बीज बोना चाहिए। मारा क्रम देसी के समान ही है। कोमल गोभी १-१½ सप्ताह तक नर्सरी-गृह में रक्खे—पौधे ४-५ इंच के अंतर पर, १-१¼ फ़ीट की पंक्ति। तीन-चार पत्ते आने पर छाँट देना चाहिए। माघ-फाल्गुन में फ़सल तैयार हो जाती है। बीज ठंडे स्थानों पर पैदा होते हैं।

टिमाटर

आजकल टिमाटर सर्वप्रिय तरकारी है। यह भारतवर्ष के लिये बिलकुल नवीन है। इसका प्रचार गत बीस वर्ष से बहुत अधिक हो गया है। रंगों के हिसाब से इसकी लाल, पीली, गुलाबी, अनेक जातियाँ हैं। कहीं-कहीं इसे विलायती बैंगन भी कहते हैं।

इसके लिये दुमट, हल्की दुमट, कछार की और कँकरीली भूमि उत्तम होती है। १०० मन गोबर और राख, ढाई मन सुपर फ़ास्फ़ेट और सवा मन सोडियम नाइट्रेट की खाद डालनी चाहिए। खाद डालने में इस बात का विचार रखना चाहिए कि इसमें ताज़ी खाद न दे, वरन् इससे पहली फ़सल में खाद दे, उसके बाद टिमाटर बोए, तो सबसे उत्तम फ़सल तैयार होती है। राख भी देनी चाहिए। सोडियम नाइट्रेट जब पौधे एक मास के हो जायँ, तब भी दी जा सकती है।

इसको दो प्रकार से लगाते हैं—दो पानी की नालियों के बीच में एक पंक्ति अथवा दो पंक्तियों के बीच में एक नाली बनाते हैं। पहली में ३-३ फ़ीट की पंक्तियाँ, दूसरी में दो नालियों के बीच में ४ फ़ीट भूमि का अंतर रखना चाहिए, और ६-६ इंच किनारों की ओर छोड़कर पौद लगावे। पहले से दूसरी रीति अच्छी है। इससे फल भीगने नहीं पाते। बीज की मात्रा २ छटाँक प्रति एकड़ है। बोने का समय मैदान में श्रावण और पर्वतीय स्थानों में वैशाख है। ५-६ बार सिंचाई की जाती है। जब पौधे बड़े हो जायँ, तो लकड़ी के सहारे खड़े करने चाहिए। निकाई समय-समय पर करते रहना चाहिए। निकाई में कुछ शाखाएँ, जो आवश्यकता से अधिक हों, तोड़ देनी चाहिए। इससे पैदावार अच्छी होती है। टिमाटर कभी-कभी हवा में बिगड़ जाते हैं। उसके

रोकने की सबसे अच्छी तरकीब लकड़ी का सहारा है। इससे फलों में नमी स्पर्श नहीं कर पाती। खेत में रोपने के ५-६ सप्ताह बाद फूल आते हैं। ८-१० सप्ताह बाद फल लगने लगते हैं। पैदावार २०० से ३०० मन प्रति एकड़ होती है। बीजों की तैयारी सावधानी से करनी चाहिए। बीज लेनेवाला टिमाटर खूब पका होना चाहिए। उसके बीज निकालकर खूब धो डाले। फिर राख में मिलाकर सुखा ले, और बंद बरतन में रख ले। आवश्यकता पड़ने पर इन्हीं बीजों को थोड़ी धूप दिखाकर बो देना चाहिए।

बैंगन

बैंगन एक रुचिकर तरकारी है। पर यह गद होता और बहुत देर में हजम होता है। इसका भर्ता बनाकर घी में भून ले, वह लाभदायक होता है। गाँवों में बैंगन खूब बोया जाता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। कुछ बैंगन गोल, कुछ लड्डू की तरह, कुछ लंबे होते हैं। लखनऊ और पटना के बैंगन प्रसिद्ध होते हैं। विलायती और सफेद बैंगन भी बाजारों में आते हैं, पर वे देशी के समान स्वादिष्ठ नहीं होते।

भूमि इसके लिये दुमट अच्छी होती है। जुताई गहरी ५-६ बार करनी चाहिए। २०० मन गोबर की खाद डालनी चाहिए। यदि खेत कमजोर हो, तो गोबर की खाद के साथ राख और पुटारा भी देना चाहिए। इसको साधारण रीति से भी बोते हैं, और पौद भी लगाते हैं। पौद गोभी के

समान तैयार की जाती हैं। पौद का खेत खूब जोरदार होना चाहिए, और पौधे घने बोए जायँ। यदि एक बार पौद में भी खाद दे दी जाय, तो पौधे तंदुरुस्त रहते हैं। बोने का समय समतल प्रदेश में कातिक से बैसाख और आधे जेठ से असाढ़ तक और पर्वतीय स्थानों में बैसाख-जेठ महीना है। आध पाव बीज एक एकड़ के लिये काफ़ी है। इसकी पौद लगाना हो, तो पंक्ति में लगाई जाय, और प्रत्येक पंक्ति की दूरी एक दूसरी से १½ फ़ीट रक्खे। पानी ५-६ बार देना पड़ता है। बरसाती बैंगन को भी यदि ठीक समय पर वर्षा न हो, तो पानी देना चाहिए। निकाई पतली खुरपी से ६-७ बार करनी चाहिए, और गुड़ाई करना भी ज़रूरी होता है। बैंगन के पेड़ यदि कमज़ोर दिखाई पड़ें, तो उनकी जड़ों के चारों ओर खुरपी से गोड़कर पुटाश, शोरा और सड़े गोबर की खाद डालकर उसको खुरपी से ही मिट्टी में मिला दें, और उसके बाद सींच दे, तो पौधे दो ही तीन दिनों में दूने हो जायँगे। बैंगन एकबारगी नहीं तोड़े जाते। जो बैंगन बढ़ता जाय, उसे तोड़ना चाहिए, और पानी लगाते रहना चाहिए। इस तरह एक एकड़ में २०० मन बैंगन पैदा होते हैं।

कभी-कभी पौधों को बीमारियाँ हो जाती हैं। एक प्रकार का काला उड़नेवाला कीड़ा पत्तियों में लग जाता है। उससे बचने के लिये चूने के पानी में नमक मिलाकर बीमार

पौधों की पत्तियों पर डाले। यदि पूरे पौधों को लग जाय, तो उसे जड़ से उखाड़कर जला देना चाहिए। सूँडी भी कभी-कभी लग जाती है। उसके लिये सूँडी से पीड़ित पत्तों पर गरम-गरम राख छिड़के, और सिंचाई कर दे। सूँडी लगे पत्तों को तोड़ डाले, और वहीं न फेंके, वरन् नष्ट कर दे। कभी-कभी बैंगन पौधे में ही सड़ जाता या काना हो जाता है। उसके लिये जड़ों को खुरप कर पानी दे। विलायती और सफ़ेद बैंगन की खेती भी इसी प्रकार की जाती है।

प्याज़

प्याज एक उत्तेजक पदार्थ है, इसी कारण बहुत-से लोग इसे नहीं खाते। पर अधिक जनता का यह दैनिक भोजन है। इसको कचा, तरकारी बना और अन्य तरकारियों में मिलाकर खाते हैं। इसे पतला-पतला काटकर, सिरके में मिलाकर, नमक डालकर बहुत-से लोग बड़े स्वाद से खाते हैं। इसका अधिक व्यवहार करने से पसीने में बदबू आने लगती है। इसकी कई क़िस्में हैं—लाल, सफ़ेद, गाँठवाला और देसावरी छोटा। बंगाल के प्याज़ छोटे, पर गंध के बड़े तेज होते हैं।

इसे बोने के लिये दुमट और साधारण मटियार खेत होना चाहिए। जुताई बहुत गहरी नहीं करते, केवल ४-५ इंच गहरा जोतते हैं। बोने के लिये क्यारियाँ बना लेते हैं, उन्हीं में सड़े

हुए गोबर की खाद लगभग १५ लढ़ी प्रति एकड़ डालनी चाहिए। बोने का समय भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न है—पहाड़ों में फागुन से जेठ तक, बंगाल में भादों से अगहन तक, बिहार में पूस से फागुन तक और मद्रास में कातिक से पूस तक। इसकी भी पौद लगाई जाती है। बीज छिटका दिए जायँ, और पौद-घर में सावधानी रक्खे। बीजों को मिट्टी में मिलाकर पत्तों से ढक दे। जब तक पौद निकल न आए, तब तक अँधेरे में रक्खा जाय। एक सप्ताह तक साया रहे, फिर धीरे-धीरे रोशनी दी जाय। लगभग ५ सप्ताह में लगाने के लिये तैयार हो जाते हैं। उसके बाद खेत में, ५-६ इंच के अंतर पर, पौधे रोपे जायँ। जड़ें सीधी रहें, मुड़ने न पावें। इतना गहरा लगाए कि आधा पौधा ऊपर रहे और आधा पृथ्वी के अंदर। पौधों की निगरानी रक्खे। यदि किसी पौधे में बीमारी हो जाय, तो उसे उसी समय उखाड़कर नया लगा देना चाहिए। जब खेत में खुश्की बढ़े, सिचाई करनी चाहिए, और निकाई चौथे-पाँचवें दिन करते रहना चाहिए। प्याज की बढ़िया गाँठ उत्पन्न हो, इसके लिये पौधे की जड़ पर मिट्टी चढ़ाते और नालियों द्वारा सिचाई करते रहना चाहिए। हरे पत्ते चटनी और तरकारी बनाने के काम आते हैं। जब पत्ते पीले पड़ने लगें, तब प्याज खोदने योग्य हो जाता है। ५-६ मास में फ़सल तैयार हो जाती है। उखाड़ने पर ५-६ इंच

का होता है। नीचे की तह हवादार स्थान में रक्खी जांय, और पत्तों में परस्पर २ इंच का फ़ासला रहे। बड़े बीज छाँटकर रख लेने चाहिए। बीजों को सुखाकर बरतन में रख ले, जिससे हवा न लगे।

शलजम

शलजम भी साग है। इसे बहुत-से लोग उत्तेजक होने के कारण नहीं खाते। इसकी गाँठें होती हैं, जिन्हें छीलकर तरकारी बनाते हैं। इसकी अनेक जातियाँ हैं, पर अधिकतर देसी, जिसका रंग हलका लाल या भूरा होता है, बोई जाती है। यह हलकी दुमट और बालूवाली पृथ्वी में खूब होता है। खेत की १०-१२ बार जुताई करनी चाहिए। जुताई ७-८ इंच गहरी अवश्य हो। यदि मिट्टी मटियार हो, तो पाड़ बाँधकर लगाना चाहिए। दुमट मिट्टी में क्यारियाँ बना लेनी चाहिए। देसी बीज के बोने का समय श्रावण और विलायती का कातिक मास है। इसकी पौद भी लगाई जाती है। २ सेर बीज एक एकड़ के लिये पर्याप्त हैं। पौद और पंक्ति की एक दूसरे से दूरी एक फुट होना चाहिए। पानी ३-४ बार प्रति देना चाहिए, और खाद सड़े गोबर की १२-१५ गाड़ियाँ एकड़ डाले। मैले की खाद इसको बहुत लगती है। यदि इसके खेत में जिस स्थान पर जानवर बँधते हों, उनके नीचे की मिट्टी खोदकर डाली जाय, तो गाँठें बड़ी-बड़ी उत्पन्न होती हैं।

सेम

सेम छोटी-बड़ी, देसी-विलायती आदि बहुत तरह की होती है। छोटी सेम जल्द पैदा होती है, इसलिये इसके लिये सहारे की आवश्यकता नहीं होती। बड़ी सेम देर में पैदा होती है, इसलिये उसके पेड़ को टट्टी, पाल या चटाई के सहारे बढ़ने देते हैं। इसके लिये दुमट और मटियार, दोनो प्रकार की मिट्टी उपयुक्त है। ८-१० बार खेत की जुताई करनी चाहिए। सड़े गोबर की खाद जोतते समय ही देनी चाहिए। चिकनी मिट्टी में बार-बार बोने से भुरभुरी हो जाती है। गुड़ाई, सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए। बोने का समय सावन-भादों के महीने हैं। एक लाइन से दूसरी की दूरी ढाई फ़ीट और पौद की पौद से लाइन में दूरी एक फ़ुट होनी चाहिए। गाँवों में स्त्रियाँ घरों में सेम बो लेती हैं, जिनको लकड़ियों और काँटों का फ्राम बनाकर फैलने देती हैं। इस तरह सेम की बेल खूब फैल जाती है, और उसमें समय पर खूब सेम पैदा होती है। सेम की ही भाँति करेला, लौकी, कद्दू, तोरई की बेलें भी बोई जाती हैं। खेतों में इनके बोने का दूसरा तरीक़ा है। इन सबके पौदे सेम की ही भाँति बढ़ने देते हैं, पर इनमें लकड़ी का सहारा नहीं लगाते, वरन् पृथ्वी पर ही तरबूज़ और ख़रबूज़े की बेलों की तरह बढ़ने देते हैं। इस प्रकार बेलें खेतों में फैल जाती हैं, और उनमें खूब अधिक परिमाण में फसल आती है।

लौकी

लौकी की भी बेल फैलती है। इसके लिये दुमट भूमि उत्तम होती है। प्रायः सभी तरकारियाँ दुमट भूमि में अच्छी उत्पन्न होती हैं। दुमट वह भूमि है, जिसमें पड़ोर, चिकनी मिट्टी, जिसे मटियार कहते हैं, और जो कड़ी होती है, उसकी और बालू की समान मात्रा होती है। इस प्रकार की भूमि मुलायम, भुरभुरी और शीघ्र जुतनेवाली होती है। इसके विरुद्ध मटियार और कड़ी बड़ी कठिनता से जुतती है। इसमें बड़े-बड़े ढेले हो जाते हैं, जिन्हें लकड़ी का बड़ा भारी रोलर घुमाकर तोड़ते हैं, क्योंकि पटेला उसमें काम नहीं कर पाता।

लौकी के खेत में सड़े गोबर की हल्की खाद देनी पड़ती है, और २-३ जुताइयाँ करके बीज बो देते हैं। प्रायः एक एकड़ में चार सेर बीज पड़ता है। इसे बीज छिटकाकर और पौद लगाकर, दोनो प्रकार से बोते हैं। यदि पंक्तियों में बोई जाय, तो प्रत्येक पौधे की एक दूसरे से छ फीट की दूरी रखनी चाहिए।

पौधा जल्दी ही उगकर पहले ऊँचा बढ़ता फिर पृथ्वी पर फैलने लगता है। धीरे-धीरे यह खूब फैल जाता है, और कुछ ही दिनों में उसमें सफ़ेद-सफ़ेद फूल आने आरंभ हो जाते हैं। फूल कुछ दिनों में मुरझा जाते हैं, और उनके डंठल के पास से लौकी बढ़ना आरंभ हो जाती है। लौकी

एक सप्ताह में पूरी बढ़कर तैयार हो जाती है। फ़सल बरसात में बोते हैं, इसलिये पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती। पर लौकी की फ़सल साल में तीन बार होती है। उस समय पानी देते रहना चाहिए, और अगहनी फ़सल में खाद अधिक देनी चाहिए। लौकी जब पूरी बढ़ जाय, तभी तोड़ लेनी चाहिए। तोड़ने में देरी करने से लौकी के बीज कड़े हो जाते हैं, और लौकी का स्वाद बिगड़ जाता है। जिस लौकी का बीज रखना चाहिए, उसे छोड़ देते हैं। जब वह पूरी पक जाती है, तब बिलकुल कड़ी हो जाती है, और भीतर के बीज पककर कड़े हो जाते हैं, तब उसको ऊपर की ओर काटकर बीज निकाल लेते और साफ़ करके बरतन में रख लेते हैं लौकी के खोखले का कमंडलु बनाते हैं, जिसे साधु हाथ में लिए रहते हैं। लौकी की ही भाँति करेला, कद्दू तोरई आदि के भी बीज तैयार किए जाते हैं।

कद्दू की फ़सल लौकी के साथ ही उत्पन्न होती है। इसके फूलों की भी बड़ी स्वादिष्ट तरकारी बनती है। फूलों में बेसन चुपड़कर तेल में भूनते हैं। यह तरकारी बहुत बढ़िया होती है।

तरबूज़ और ख़रबूज़ा

तरबूज़ और ख़रबूज़े प्रायः नदियों के किनारे, बलुई भूमि में, बोए जाते हैं। इसकी भी बेलें फैलती हैं। यदि बहुत खुश्की होती है, तो एक पानी दे देते हैं, नहीं तो इनको पानी की ज़रूरत नहीं पड़ती। यदि इनके खेत में सड़े गोबर की खाद

दे दी जाय, तो फसल दूनी तैयार होती है। बरसात के पहले-पहले फसल समाप्त हो जाती है। तरबूज़ को यदि पौधे में लगा-लगा ही बालू में दबा दें, तो उसका आकार बढ़ जाता और खाने में बहुत मीठा लगता है। खरबूजों की सैकड़ों जातियाँ हैं। लखनऊ के पीले रंग के खरबूजे प्रसिद्ध हैं। ये भी इसी भाँति बोए जाते हैं। इनके बीज यदि अन्य स्थानों में बोए जायँ, तो भी फसल इसी तरह उत्तम होती है। पर हमारे किसान तो पुराने बीजों का प्रेम छोड़ ही नहीं सकते, और आवश्यक बातों, जैसे समय पर बोना, खाद देना, सींचना, निराना आदि, से बिलकुल लापरवाह हो जाते हैं। फल यह होता है कि फसल कमज़ोर होती है।

परवल

परवल एक पोषक शाक है। इसे बीमारियों में पथ्य के तौर पर देते हैं। वैसे भी यह बड़ी जल्दी हज़म हो जाता है। यह पश्चिमी बंगाल, बिहार और संयुक्त प्रांत में बहुत होता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं—एक तो पतले हरे रंग की, दूसरी मोटे हरे रंग की। इसकी भी बेल होती है, जो १५-२० हाथ बढ़ती है। इसके पत्ते पान के आकार के होते हैं। पर सेम के पत्तों की भाँति चिकने नहीं होते, वरन् खुरदरे होते हैं। इसके फूल बिलकुल कुँदरू के फूल के आकार के होते हैं।

गोबर की लगभग डेढ़ सौ मन प्रति एकड़ देना चाहिए। पानी भी आवश्यकतानुसार देना चाहिए। बोने का समय बैसाख से सावन तक होता है। चार सेर प्रति एकड़ बीज पड़ता है। इसका बीज छिटकाकर और पौद लगाकर, दोनो रीतियों से बोते हैं। पौद से इतना लाभ होता है कि जिस प्रकार चाहते हैं, उसी प्रकार दूरी छोड़कर लगा सकते हैं। छिटककर बोने में लाइनें ठीक नहीं बन सकतीं, जिससे पानी देने के लिये नालियाँ बड़ी कठिनता से बन पाती हैं, और सिचाई एक समान नहीं हो पाती। यदि पौद लगानी हो, तो गोभी के फूल के समान पौद-घर में तैयार कर लेनी चाहिए। फिर तीन-तीन फ़ीट की दूरी पर पंक्ति लगानी चाहिए, और दो पंक्तियों के बीच में नाली बना देनी चाहिए। प्रायः चार महीने में फ़सल तैयार हो जाती है। भिंडी की फ़सल को जल्दी ही तोड़ना चाहिए, क्योंकि मुलायम भिंडी ही खाने योग्य होती है।

घुइयाँ

घुइयाँ एक ऐसी तरकारी है, जो आलू के समान बारहों महीने बिका करती है। इसे अरुई, अरनी और अरबी भी कहते हैं। इसकी खेती गाँवों में खूब होती है। इसके लिये भी दुमट भूमि उत्तम है। खेत की जुताई कम-से-कम ६-७ बार अवश्य करनी चाहिए। और, खाद जोतने के पहले डाल-कर मिट्टी में खूब मिला देनी चाहिए। इसे बोने के लिये पहले से ही मेड़ें और नालियाँ बना लेनी पड़ती हैं। तीन-तीन फ़ीट

की दूरी पर एक बालिश्त ऊँची उठी हुई मेड़ें तैयार करनी चाहिए। इन्हीं मेड़ों में पतली खुरपी से खोदकर घुइयाँ बोना चाहिए। बीज प्रायः एक एकड़ में ५ मन लगता है, और बंडा या मूढ़ा के लिये ८ मन। बोने का समय वर्षा के पहले है। बीज के लिये जो घुइयाँ ली जायँ, वे बिलकुल नीरोग, साफ़ और छिलके के साथ हों। बोने के पहले यदि हलके नमक के पानी में डुबोकर सुखा लें, तो उगने में जल्दी हो जाती है। घुइयाँ पानी बहुत चाहती है। बोने के समय भी खेत में काफ़ी नमी होनी चाहिए, और पौधे उगते ही सिंचाई करनी चाहिए। निराई आरंभ में करे, और जब-जब निराई करे, तब-तब पौधों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ावे। प्रायः जितनी भी ऐसी तरकारियाँ जो जड़ों में पैदा होती हैं, उनमें मिट्टी चढ़ा दी जाती है। सिंचाई तो हर पाँचवें दिन अवश्य करनी चाहिए। घुइयाँ के पत्ते खूब बड़े-बड़े पुरइन (कमल) के पत्तों की तरह होते हैं, और जब पौधे खूब बढ़ते हैं, तो खेत पूरा भर जाता है। पहले उगे हुए पत्ते नीचे से तोड़कर बेच लेते हैं। इन पत्तों को बेसन में मिलाकर पकौड़ियाँ बनाई जाती हैं, जो दही में मिलाकर खाने में बड़ी स्वादिष्ठ लगती हैं। यदि एक पेड़ में तीन से अधिक तने हों, तो अतिरिक्त तनों को तोड़कर बेच लेना चाहिए। कच्ची घुइयाँ और पत्ते बड़े चरपरे होते हैं। पत्ते प्रायः २-३ बार तोड़े जाते हैं, जिससे पेड़ पूरा बढ़ जाय, और मिट्टी हर बार चढ़ाते जाते हैं। जब घुइयाँ पकने को होती हैं, तो पत्तों

का रंग बदलने लगता है। घुइयाँ फ़सल-भर में तीन बार खोदी जाती हैं। पहली दो बार की घुइयाँ नरम और स्वादिष्ट होती हैं, तीसरी बार में खूब बड़ी और कड़ी हो जाती हैं। इन्हीं में से बीज के लिये छाँटना चाहिए। घुइयाँ दो साल तक बड़े मजे से रख सकते हैं। खोदकर हवादार मकान में रखना चाहिए। पैदावार एक एकड़ में प्रायः २०० मन होती है।

लाल मिर्च

घुइयाँ के समान ही लाल मिर्च की भी खेती होती है। इसके लिये पानी प्रति तीसरे दिन दिया जाता है। इसकी पौद लगाई जाती है। पेड़ एक फ़ुट तक लंबे हो जाते हैं। तीन-चार महीनों में फ़सल आने लगती है। हरी, कोमल मिर्च देखने में बहुत अच्छी लगती है। धीरे-धीरे वही बड़ी हो जाती है, और एकबारगी हरे से गुलाबी और गुलाबी से लाल हो जाती है। गाँवों में लाल मिर्च की खूब खेती होती है।

मूली

मूली भी गाजर और शलजम की तरह जड़ होती है। इसके लिये दुमट मिट्टी की आवश्यकता पड़ती है। पर यह अन्य प्रकार की भूमि में भी हो सकती है। इसकी साल में दो फ़सलें होती हैं। बोने का समय बैसाख और जेठ है। बीज प्रति एकड़ तीन सेर पड़ता है। इसकी पौद बड़ी जल्दी लग जाती है। लाइनों में दूरी एक दूसरी से नौ इंच रखनी चाहिए, और एक पौधे से

दूसरी की दूरी चार इंच रखनी चाहिए। निराई, गुड़ाई और सिंचाई गाजर और भिंडी के समान करनी चाहिए। जब पत्ते कड़े और गहरे रंग के हो जायँ, तब उखाड़नी चाहिए। मूली के खेत में सड़े गोबर और नाइट्रेट की खाद देने से मूली मोटी और लंबी होती है।

सिंघाड़ा

सिंघाड़ा एक ऐसा फल है, जो पानी में पैदा होता है। इसे लोग कच्चा और उबालकर खाते हैं। व्रत के दिनों में सिंघाड़े के आटे की पूड़ियाँ और हलुआ बनाते हैं। इसे असाढ़ के महीने में लगाते हैं। जब तालाबों में खूब पानी भर जाता है, तब सिंघाड़े के पौधे, जिनकी पौद पहले से ही तैयार होती है, तालाब की तह में मिट्टी हटाकर लगा देते हैं। मिट्टी में पौधे की जड़ें मजबूती से गाड़ देते हैं। पत्ते ऊपर तैरते रहते हैं। इन बेलों की दिन-दूनी रात-चौगुनी वृद्धि होती है। देखते-देखते सारा तालाब हरे-हरे पत्तों से छा जाता है। सिंघाड़े की निराई बड़ी कठिन है। दिन-दिन-भर पानी में रहना पड़ता है। इसके लिये एक विशेष प्रकार की सवारी बनाई जाती है, जिसको घन्नई कहते हैं। दो बड़े-बड़े घड़ों को उलटा करके दोनो के मुँह पर से होकर एक लकड़ी, बाँस या अन्य प्रकार की चिकवी बाँध देते हैं। बस, इसी को तालाब में डाल देते हैं। डंडे पर आदमी बैठकर सिंघाड़े की बेलों की निराई करता है और जो

बेलें एक दूसरी से फँस जाती हैं। उनको ठीक कर देता है। जिनकी जड़ें खुल जाती हैं, उन्हें फिर से लगा देता और घोंघा, सीप आदि जो चिपक जाते हैं, उनको छुड़ा देता है। सिंघाड़ों में बीमारियाँ भी खूब होती हैं। बेलों में एक प्रकार का कीड़ा लग जाता है, जो सब पत्तों को खाने लगता है। उससे बचने का कोई उपाय नहीं। वहाँ पानी में कोई दवा काम नहीं करती, कीड़े असंख्य हो जाते और प्रति मिनट बढ़ते जाते हैं। उनको नष्ट करने के लिये लोग बड़ी-बड़ी थैलियाँ लेकर घन्नई पर सवार होते हैं, और उन थैलियों में कीड़ों को पकड़-पकड़कर भर लेते हैं। जब थैली भर जाती है, तो उसको किसी खेत में ले जाकर गाड़ देते हैं। हफ्तों की लगातार मेहनत से कीड़े नष्ट हो जाते हैं। सिंघाड़े की बेलों में लगभग तीन महीने में सिंघाड़ा आने लगता है। उस समय भी बीमारी लगती है, पर लोग उससे बचने का पहले से ही प्रबंध किए रहते हैं। कोमल सिंघाड़े मीठे और स्वादिष्ट होते हैं। सिंघाड़ों की तुड़ाई हफ्तों चलती है, और एक बीघे के तालाब में २०० मन तक तैयार हो जाते हैं। बीच की फसल के सिंघाड़े कड़े हो जाते हैं। उनको उबाल कर खाते हैं। पर रखने के लिये सबसे अंत में सिंघाड़े लिए जाते हैं, जो पककर काले पड़ जाते हैं। उनको सुखा लेते हैं। सूखने पर कड़े हो जाते हैं, तब उनको बेच लेते हैं। उनको तोड़

कर पिसवा लेते और आटे को खाने के काम में लाते हैं।

कमल

सिंघाड़ों के समान कहीं-कहीं कमल भी बोए जाते हैं। कमल देर में लगता है। पर यदि एक बार लग जाता है, तो सैकड़ों वर्ष के लिये हो जाता है। कमल के फूल के गिर जाने के बाद एक बड़ी छतिया निकलती है, जिसके दाने खाने में बड़े मीठे होते हैं। उनके पक जाने पर भुनाने से मखाने तैयार हो जाते हैं। कमल की जड़ से भसीढ़े निकलते हैं, जिनकी तरकारी केले की फलियों की तरह बड़ी अच्छी बनती है। भसीढ़े को सिरके में डालकर भी खाते हैं, तथा कई प्रकार से दवाइयों में प्रयोग करते हैं।

पैवंद लगाना

छोटी जाति से बड़ी क़िस्म का पेड़ बनाने या एक पेड़ का असर दूसरे में पैदा करने के लिये पैवंद लगाते हैं। पैवंद एक ही जिंस या क़िस्म के पौधों में लगाया जाता है। इसके लगाने में बड़ी होशियारी की जरूरत होती है। पैवंद लगाते समय निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) वसंत-ऋतु के आरंभ में पैवंद लगाना चाहिए।

(२) जिस पेड़ का पैवंद दूसरे पेड़ में लगाना हो, उसकी डाली उतनी ही मोटी होनी चाहिए, जितनी दूसरे पेड़ की हो।

(३) अँकुए लगी हुई डाली काटकर दो-तीन दिन तक भीगे कपड़े से बाँध रखना चाहिए, जिससे उसका छिलका आसानी से उतर सके, और अँकुए में कुछ शक्ति पैदा हो जाय।

(४) उन शाखों के अँकुए, जो काटी जायँ, काँटों की तरह तेज न होने चाहिए।

पैवंद लगाने का यह तरीक़ा है कि पतझड़ के दिनों में उस पेड़ या पौधे को, जिसमें पैवंद लगाना है, काट देना चाहिए। वसंत-ऋतु में जब एक इंच मोटी डाली हो जाय, तब

उसे थोड़ा-थोड़ा रखकर काट डाले। फिर उसके ऊपर से १ इंच के बराबर छिलका होशियारी से निकाल दे। डाली की लकड़ी को कुछ चोट न पहुँचे। फिर जिस डाली का पैवंद लगाना है, उस पर से होशियारी के साथ छल्ला बनाकर छिलका निकाले, और पहले पेड़ पर चढ़ा दे, इस तरह कि अँकुए को हानि न पहुँचे। दोनो डालियों को इस छल्ले के अंदर बराबर रखकर सन या कच्चे रेशम के तार से बाँध दे, और अँकुए की जगह छोड़कर बाक़ी जगह पर चिकनी मिट्टी और गोबर बराबर मिलाकर तथा कुछ बारीक भूसा मिलाकर लेप कर दे। जब अँकुए अच्छी तरह फूट निकलें, तब रेशम या सन निकाल डाले। सिर्फ़ इन अँकुओं को साल-भर तक बढ़ने दे। बाक़ी जो निकलें, उन्हें नोच डाले, तो पैवंद ठीक लग जाता है।

निराई या सोहनी

निराई का मुख्य काम खेतों से घास-पात निकाल फेकना और ऊपर की मिट्टी गोड़कर कुछ पोला कर देना है। खेतों में बहुधा अनावश्यक पौधे या घास उग आती है। वे स्थान घेरकर और रस चूसकर असली खेती को हानि पहुँचाते हैं, अतः निराई की बड़ी आवश्यकता होती है। क्योंकि ये पौधे फ़सल के शत्रु हैं। ये व्यर्थ की घास-पात पौधे की बाढ़ रोकते हैं। साथ ही फ़सल के लिये हानिकारक कीटाणुओं को शरण देते हैं, प्रकाश और वायु रोकते हैं, जिससे फ़सल नहीं बढ़ने पाती। ऊपर की मिट्टी ढीली होने से हवा का आवागमन जड़ों तक स्वतंत्रता से होता रहता है, जिससे फ़सल को भारी लाभ पहुँचता है।

गोड़ने के कारण खेत में नमी बनी रहती है, और पानी उड़ने नहीं पाता। इस क्रिया से किसी अंश तक पौधों को भोजन भी मिल जाता है, और जो पानी बरसता है, पेड़ों के काम आ जाता है, व्यर्थ नहीं जाता।

निराई का समय और रीति

जब फ़सल के पौध छोटे रहें, तब निराई कम गहरी और जल्दी-जल्दी करनी चाहिए। ज्यों-ज्यों पौधे बढ़ते जायें,

निराई का समय और गहराई बढ़ाते जाना चाहिए। छोटे-छोटे पौधों के समय यदि निराई में देर कर दी जाय, तो दूसरे अनावश्यक पौधे ज्यादा बढ़ जाते हैं, तब इनको निकालने के लिये फिर गहरी निराई करनी पड़ती है, जिससे छोटे-छोटे पौधों की जड़ों को हानि पहुँचती है। अतः निराई समय पर करनी चाहिए, जिससे पौधों की बढ़वार उचित रीति से हो सके, और उन्हें किसी प्रकार की रुकावट का सामना न करना पड़े।

खर-पतवार

बहुधा खेत में विना बोए बहुत-सी घास आदि उग आती है। इसे खर-पतवार कहते हैं। खर-पतवार की कुछ जातियाँ अपना भोजन भूमि से न लेकर पास के पौधों से लेती हैं, और कुछ पौधे अपना भोजन आधा ज़मीन से लेते हैं और आधा खेती की पैदावार से। इस दशा में भूमि भी निर्बल हो जाती और पैदावार भी कमज़ोर पड़ जाती है। अतः खर-पतवार आदि खेत में नाम को भी न रखना चाहिए। 'आगिया' घास उक्त प्रकार का उत्तम उदाहरण है। ऐसे खर-पतवार परोपजीवी कहलाते हैं। और, सभी पतवार खेत की जगह घेरकर भूमि और पैदावार को हानि पहुँचाते हैं। इससे फ़सल की बाढ़ रुक जाती है।

खर-पतवार दो प्रकार के होते हैं—

(१) वर्षायु खर-पतवार—जिनकी अवस्था केवल एक फ़सल की होती है। इन्हें फूल आने से पहले ही उखाड़कर फेंक देना चाहिए, जिससे घास-पात खेत में फैलकर रस न सोख सकें।

(२) बहुवर्षायु खर-पतवार—इनकी जड़ें भूमि में गहरी चली जाती हैं, अतः इनका नाश करना मुश्किल होता है।

काँस, कुंदा, दूब, नागरमोथा ऐसे ही खर-पतवार हैं, जो कम मेहनत और थोड़े खर्च में नष्ट नहीं किए जा सकते। इन्हें नष्ट करने का उत्तम उपाय यही है कि फ़सल काट लेने पर मिट्टी उलटनेवाले हलों से गहरी जुताई की जाय।

यदि संभव हो, तो काँस, कुंदा, दूब आदि के भौमिक कंद आदि तनों को जमा करके जला दिया जाय। इसमें खर्च अधिक बैठता है। फिर भारतीय किसान लोहे के हल का प्रयोग नहीं करते, इसलिये अन्य उपाय ही काम में लाने चाहिए।

इसके लिये खेतों में तिल, सन आदि जल्द उगनेवाली फ़सलें लगातार दो-चार वर्ष तक पैदा की जायँ, तो बहु-वर्षीय खर-पतवार नष्ट हो जायगा। तिल, कुलथी, सन, उड़द, मूँग आदि के पौधे घने बोए जाते हैं। इनके पत्ते ज़मीन को ढक लेते हैं, जिससे खर-पतवार आदि के पौधों को प्रकाश, धूप और हवा नहीं मिल पाती, जो बाढ़ के लिये ज़रूरी है। इनके अभाव में व्यर्थ के पौधे दम घुटकर मर जाते हैं। ६ इंच से ९ इंच तक गहरी जुताई करने और भौमिक तनों तथा शाखाओं को इकट्ठा कर जला डालने एवं लगातार कुछ वर्षों तक सन, तिल आदि फ़सलें बोते रहने से बहुवर्षीय खर-पतवार नष्ट हो जाते हैं। तब फ़सल बहुत अच्छी हो सकती है।

फ़सल को फेर-बदलकर बोना

काश्तकार को यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि लगातार एक ही फ़सल एक ही खेत में प्रतिवर्ष न बोए, वरन् प्रतिवर्ष फ़सल बदलते रहना चाहिए, नहीं तो भूमि से एक प्रकार का तत्त्व निकल जाने से उसी खेत में एक ही प्रकार की फ़सल दुबारा बोने से वह कदापि अच्छी नहीं हो सकती। इसलिये किसान को प्रतिवर्ष फ़सल बदलने का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

गेहूँ की फ़सल के बाद यदि दूसरे वर्ष फिर उसी खेत में गेहूँ बोया जायगा, तो वह हानिकारक होगा। क्योंकि पहले वर्ष के हानिकारक कीड़े दूसरे वर्ष उसी फ़सल के करने से उसे अत्यधिक हानि पहुँचावेंगे। और, गेहूँ के तत्त्व पहले वर्ष ही फ़सल ने खींच लिए हैं, अतः नए वर्ष में उन तत्त्वों की अवश्य कमी पड़ेगी, और फ़सल बिगड़ जायगी।

इसलिये सदैव ध्यान रखना चाहिए कि गहरी जड़वाली मूसला फ़सल के बाद उथली जड़वाली फकरा फ़सल बोनी चाहिए। अधिक खाद चाहनेवाली फ़सल के बाद कम खाद चाहनेवाली फ़सल बोनी चाहिए। इससे भूमि के तत्त्व सदैव एक-से बने रहते हैं। प्रतिवर्ष फ़सल अच्छी होती रहती है।

जिस फ़सल के लिये नाइट्रोजन अधिक चाहिए, उसके बाद दूसरे वर्ष स्फुट और पुटाश की खाद चाहनेवाली फ़सल बोना अच्छा होता है। जड़वाली शकरक़ंद, मूली-जैसी फ़सल के बाद पत्तेवाली फ़सल बोना अच्छा होता है। फलदार फ़सल बोने के बाद फलीदार फ़सल बोना चाहिए। जो किसान इन बातों का ध्यान रखता है, वह कभी धोखा नहीं खाता, और न फ़सल बिगड़ने से उसे पछताना ही पड़ता है।

किसान को केवल इसी बात का ध्यान नहीं रखना है, उसे अन्य पचासों विचारों को सामने रखकर फ़सल बोना पड़ता है। बीज कैसा हो, भूमि की जुताई किस प्रकार की जाय, जल का प्रबंध किस प्रकार हो, खेत की रखवाली किस प्रकार की जाय, वर्षा कम हो, तो क्या प्रबंध हो, अधिक हो, तो पानी कैसे निकाला जाय, कब बीज बोना चाहिए, ओठ का अवसर कौन-सा ठीक है, जब बीज बोया जाय। किस फ़सल के लिये कौन-सी खाद ठीक होती है, और वह कब तथा किस प्रकार देनी चाहिए। भूमि में कौन-से तत्त्व की कमी है, तथा उसकी पूर्ति किस खाद से हो सकती है, पौधे के शत्रुओं से फ़सल कैसे बचाई जा सकती है, फिर अनाज आ जाय, तो उसे सुरक्षित रखने के उपाय तथा मंडी का बाजार-भाव अच्छा मिलने पर बेचने का प्रबंध आदि अनेकों बातें समय से सोचने की आवश्यकता होती है। इसलिये किसान को बहुत ही सतर्क और चतुर तथा कृषि-विद्या में

दक्ष होने की बड़ी आवश्यकता है। अनभिज्ञ किसान परिश्रमी होने पर भी अच्छी फसल पैदा नहीं कर सकता, अतः उसे कृषि-विषयक अच्छा ज्ञान होना ही चाहिए।

बखार में रखना

देहातों में अनाज भरने के लिये अनेक प्रकार के साधन काम में लाए जाते हैं। बखार, बंडा, खौं, कोठी, मटका आदि में अनाज भरकर रखते हैं। अनाज के लिये गोदाम भी बनाए जाते हैं। इनमें गेहूँ आदि बोरों में भरकर या खुला हुआ रख देते हैं, और बरसात में नहीं खोलते। गोदाम के संबंध में नीचे लिखी बातें ध्यान में रहनी चाहिए—

(१) गोदाम जिस भूमि पर बनाया जाय, वह आस-पास की धरती से ऊँचा हो, जिससे सील न पहुँचने पावे, और पानी न रुके।

(२) गोदाम में खिड़कियाँ न होनी चाहिए, केवल एक दरवाज़ा हो।

(३) दरवाज़ा पूर्व की ओर न होना चाहिए।

(४) कोने कम होने चाहिए।

(५) फ़र्श पक्का हो, और फ़र्श से एक हाथ ऊँचाई तक दीवारों पर कोलतार पुता हो।

(६) गोदाम में कोई छेद, बिल या दराज़ न होनी चाहिए। अनाज रखते समय भी निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) फ़र्श पर बालू या भूसे की मोटी तह बिछा देनी चाहिए।

(२) जब पछवाँ हवा चले, तब अनाज धूप में सुखा लेना चाहिए। फिर बोरों में भरकर या खुला हुआ बखार में भर देना चाहिए।

(३) कुछ नेपथलीन की गोलियाँ रख देनी चाहिए, जिससे घुन न लगे।

(४) अंत में फिर भूसे की तह ऊपर से भी दे देनी चाहिए।

(५) एक बार दरवाज़ा बंद करके बार-बार न खोलना चाहिए।

(६) दीवारों पर ऐसा पलस्तर हो कि कीड़े अपना घर न बना सकें।

(७) नया गेहूँ भरने से पहले गोदाम पुतवा देना चाहिए। और, उसे सुखाने के लिये कई दिन तक गोदाम खुला छोड़ देना चाहिए।

इन बातों का ध्यान रखने से अनाज बहुत समय तक भंडारों में भरा रह सकता है, और उसमें कोई विकार उत्पन्न न होगा।

पशु-पालन

भारत में पशुओं का खेती से बड़ा घनिष्ठ संबंध है। बैलों और भैंसों से ही यहाँ खेती का काम लिया जाता है। गाएँ और भैंसें ही हमें बैल और भैंसे देती हैं, जिनसे हमारी खेती का काम चलता है। इनमें बैलों का ही बहुतायत से प्रयोग होता है, अतः बैल ही हमारी खेती की जान हैं। इसलिये अच्छे बैलों का होना बहुत जरूरी है। इस देश में गाय-बैलों की अनेक जातियाँ प्रसिद्ध हैं। फिर भी ये गाएँ पाश्चात्य देशों की अपेक्षा कम दूध देती हैं। यहाँ उत्तम नस्ल की गाएँ और बैल हरियाना, सिंधी, मांटगोमरी, गिर और मेवाती मुख्य हैं।

हरियाना—इस स्थान के गाय-बैलों को हाँसी और हिसार के नाम से प्रसिद्ध किया जाता है। रोहतक और हिसार के जिले में यह नस्ल मिलती है, तथा सिरसा, जहाजगढ़ और अमृतसर के बाज़ारों और मेलों में इनकी खरीद अधिक होती है। इस जाति के बैल सबसे अच्छे होते हैं।

बैल का रंग प्रायः सफ़ेद या खाकी, चेहरा लंबा और नोकदार, माथा चौड़ा और कुछ उभरा हुआ, आँखें बड़ी-बड़ी, सींगों की लंबाई मध्यम, ऊपर को उठे हुए और भीतर को मुड़े हुएहोते हैं। दुम के बाल लंबे और लटकते हुए

होते हैं। वह लंबी, ऊँचाई ६४ से ८४ इंच तक होती है। गर्दन छोटी, पीछे का भाग चौड़ा, टाँगें छोटी और मजबूत, सिर सीधा, गर्दन के नीचे की खाल बड़ी और लटकती हुई होती है। बैल और गाय दोनों सुंदर होते हैं। बैल गाड़ी और हल में अच्छा काम करते हैं। यहाँ की गाएँ एक समय में ४ सेर दूध देती हैं। थन बड़े-बड़े होते हैं।

सिंधी नस्ल—कराँची के आस-पास मिलती है। इस जाति की गाएँ हरियाना से अधिक दूध देनेवाली होती हैं, पर बैल उनकी अपेक्षा अच्छे नहीं होते। बैल का बदन मध्यम दर्जे का गठा हुआ होता है। सींग छोटे, नुकीले, थूथड़ चौड़ा, गर्दन छोटी और मोटी, रंग अधिकांश लाल और भूरा होता है।

मांटगोमरी—इस जाति को साहीवाल कहते हैं। यहाँ की गाएँ भारत-भर में सबसे अच्छी होती हैं, परंतु बैल हरियाना से अच्छे नहीं होते। इनका सिर छोटा और कुडौल होता है।

गिर—यह जाति काठियावाड़ प्रांत में गिरनार के आस-पास मिलती है। बैल अच्छे होते हैं, पर गाएँ मध्यम श्रेणी की ही होती हैं। ये सिंधी बैलों के समान होते हैं। बदन गठा हुआ, चौड़ा और बड़ा होता है। रंग लाल और भूरा होता है। परवा और मुतान बड़ा होता है।

मेवाती—इसे कोसी भी कहते हैं। इसके पशु भरतपुर, मथुरा, अलवर और गुड़गाँव में पाए जाते हैं। इस जाति के बैल मेहनती, और पुष्ट होते तथा गाड़ी और हल में अच्छा काम देते हैं। ये सीधे, तेज़ और सुंदर होते हैं। गाएँ मध्यम दर्जे की होती हैं। यह बैल हरियाना बैल से कुछ छोटा होता है। रंग सफ़ेद और ख़ाकी होता है। इसका परवा व मुतान छोटा होता है।

इनके सिवा कांकरेची, गुजराती, नीलोरी दक्षिणी मालवी, लायलपुरी और मैसूरी नस्ल भी क्रमशः प्रसिद्ध हैं।

इनके सिवा और भी कुछ नस्लें या उपजातियाँ पाई जाती हैं। आगरा और अवध के सूबे में कई छोटी-छोटी जातियाँ पाई जाती हैं। पहाड़ी नस्ल कई जातियों के मेल से बनी है।

भैंस—इसे भी लोग बहुत पालते हैं। इसका दूध गाढ़ा और घी गाय से अधिक निकलता है। इसकी तीन जातियाँ प्रसिद्ध हैं—

(१) मुर्रा और दिल्ली-भैंस—यह रोहतक-ज़िले में अधिक मिलती है। इसका डीलडौल भारी होता है। सींग चक्करदार, आँखों की पुतली कभी-कभी सफ़ेद होती है। खुर, दुम और चेहरे पर कभी-कभी सफ़ेद चित्ती होती है।

(२) सूरती भैंस—यह गुजरात के आनंद-ज़िले में मिलती है। इसका बदन छोटा और गठा हुआ, सींग छोटे और रंग भूरा होता है।

(३) जाफ़राबादी भैंस—यह गिरनार पहाड़ के समीप काठियावाड़ में अधिक पाई जाती है। बदन भारी, नाक की हड्डी और माथा ऊपर को उठा हुआ और सींग नीचे को मुड़े हुए होते हैं।

उत्तम गाय की पहचान—गाय कम उम्र की, एक-दो बार की बियानी लेनी चाहिए। ज़्यादा बियानी गाय का पेट लटक आता है। मांस में झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। अच्छी गाय के बाल मुलायम, खाल ढीली, सिर छोटा, सींग नुकीले, दुम पतली और गुच्छेदार, टाँगें छोटी, पुट्ठे चौड़े, रानें फैली हुई, जिनमें भारी ऐन हो, थन लंबे और भरे हुए तथा पेट पर ऐन से मिली हुई नसें हों, वही गाय अच्छी होती है। गाय का पिछला भाग उठा हुआ और भारी हो, तो अच्छा। गाय मोटी अधिक न हो। मोटी गाय दूध अच्छा नहीं देती।

बैल और भैंस भी घुमा-फिराकर और देख-भालकर अच्छी नस्ल के लेनी चाहिए।

बकरी—पशुओं में बकरी का भी बड़ा महत्त्व है। इसका दूध बड़ा गुणकारी होता है। इसकी अन्य वस्तुएँ भी बड़े काम की हैं। दूध से पनीर बनता है। बालों से ऊनी दुशाले, आँतों की तांत, सींग और खुर की पुटाश, पुट्ठों और नसों का सरेस, खाल की अनेक वस्तुएं तथा मेंगनी और मूत्र खाद के काम आता है। इँगलैंड और स्विटज़रलैंड में बकरी पालने का अधिक रिवाज है।

भारत में इसकी २५ जातियाँ हैं। अफ़ग़ानिस्तान की पार खोर, और नीलगिरी की जंगली बकरी भी प्रसिद्ध है। जमुनापारी मुख्यतया इटावे-ज़िले के जमुना किनारे बकरी की बड़ी अच्छी नस्ल मिलती है।

इसको दाना, घास और भूसा मिलाकर देना चाहिए। ये भी खूब दूध दे सकती हैं।

पशुशाला

मनुष्यों के समान पशुओं को भी अच्छे स्थान पर रखना चाहिए, जहाँ जाड़ा, गर्मी, धूप और वर्षा से बचने का पर्याप्त प्रबंध हो। स्थान की स्थिति आस-पास से ऊंची हो। रास्ते के किनारे न हो, इससे छूत की बीमारी का भय होता है। स्वच्छ पानी का प्रबंध हो। थोड़े पशु हों, तो एक लाइनवाला मकान अच्छा होता है, पर अधिक पशु होने पर दुहरी लाइन के मकान ठीक होंगे।

स्थान—प्रत्येक पशु के लिये ७'×४' जगह चाहिए। नाली और रास्ते के लिये दो-दो फ़ीट जगह छोड़नी चाहिए। लड़ौरी दो फ़ीट ऊँची, १ फ़ुट गहरी और १½ फ़ीट चौड़ी होनी चाहिए। पशुशाला में वायु और प्रकाश का अच्छा प्रबंध हो। तीन पशुओं के बीच में एक खिड़की अवश्य होनी चाहिए। फ़र्श बैलों के लिये कच्चा और गायों के लिये पक्का बनाना चाहिए।

गाय, बैल, भैंस और बछड़ों को पृथक्-पृथक् बाँधना

चाहिए, जिससे दूध न पी सकें। प्रत्येक पशु का स्थान नियत होना चाहिए। रस्सी गर्दन में ढीली बाँधनी चाहिए। सींग या पैर में रस्सी न बाँधी जाय।

हरा चारा या दाना

जो देश उन्नत और संपन्न हैं, वे पशुओं की अच्छी परवरिश करते और धन-धान्य से परिपूर्ण हो जाते हैं। भारत में इनके चारे आदि का उत्तम प्रबंध नहीं रहता। पशुओं को सदैव शुद्ध जल और स्वच्छ चारा देना चाहिए। मैला, सड़ा-गला कभी न दिया जाय। एक ही वस्तु सदैव न खिलाई जाय, यह बदलते रहना चाहिए। हरा चारा थोड़ा-बहुत सदैव देते रहना चाहिए। जाड़े में दो बार और गर्मी में चार बार पानी पिलाना चाहिए। अच्छे पालन से ही अमेरिका और डेनमार्क की गाएँ भारत की गायों से ७ गुना अधिक दूध देती हैं।

भोजन में ३ प्रकार के पदार्थ होने चाहिए—(१) चारा, (२) दाना और (३) मसाला।

उनके भोजन में प्रोटीन (चीनी के समान पदार्थ), तैल-सदृश (फैट), आवश्यक नमक और खाद्य प्राण (विटामिन) हो। वे ही चारे उत्तम हैं, जो शरीर, बल और आयुवर्द्धक हों।

सब जानवरों को एक-सा चारा न देना चाहिए। पोषण और जीवन के लिये उक्त पाँचों अंश होने चाहिए। परंतु

दूधवाले पशुओं के भोजन में काम करनेवालों की अपेक्षा प्रोटीन, नमक और विटामिन कम होने चाहिए।

परिमाण—१२-१३ मन वज़न के पशु को १२-१३ सेर सूखा या ३६ से ४८ सेर तक हरा चारा देना चाहिए। ८-६ मन के पशु को ८-६ सेर सूखा या २४ से ३२ सेर तक हरा चारा, १-२ मन के पशु के लिये २ ½-३ सेर सूखा और ७-८ सेर हरा चारा हो। अर्थात् फ़ी मन वज़न पर १ सेर सूखा और ३ सेर हरा चारा होना चाहिए।

बढ़नेवाले पशु (बछड़े आदि) को प्रोटीन, क्षार और विटामिन अधिक देना चाहिए, जिससे मांस पुष्ट और हड्डी सुदृढ़ हो। शक्कर और तेल कम दिए जायँ।

३- ४½ मास के बछड़े को प्रोटीन की मात्रावाली खली और दाना ‍।।, छ मास से १ वर्ष तक के बछड़े को ‍।१।। तथा १ वर्ष से ३ वर्ष तक के बछड़े को ‍।१।। अधिक प्रोटीन-वाली खली और दाना दिया जाय।

दूधवाले पशु को साधारण पशु से अधिक, पर बच्चों से कम प्रोटीन, क्षार और विटामिन दिया जाय। शक्कर और तैल-सदृश वस्तु भी थोड़ी ही दी जाय। प्रति २ सेर दूध पर ‍।१ सेर खली-दाना होना चाहिए। गर्भिणी गाय-भैंस के भोजन में प्रोटीन, क्षार, विटामिन अधिक हो, और चीनी, चिकनई के पदार्थ कम हों। बियाने पर आरंभ में पूरी ख़ूराक न दी जाय, क्योंकि उस समय हाज़मा ठीक नहीं होता।

गर्भिणी को १२ छटाँक चोकर और छ मास के गर्भ पर १२ छटाँक खली अधिक दी जाय। बछड़ियों या ओसर (पहले ब्यात के पशु) को अधिक खूराक दी जाय। इन्हें भी शक्कर और चिकनई कम दे। इन्हें ऽ॥ तिल, सरसों या मूँगफली की खली देनी चाहिए। ऽ॥। चना, अरहर, मोठ, मटर या लोबिए का दाना देना चाहिए।

काम के पशु को और भी अधिक खूराक देनी चाहिए।

एक एकड़ जोतने वाले बैल के लिये, जो ८-१० घंटे काम करता हो, ६-७ सेर दाना और खली हो। ¾ एकड़वाले को ४-५ सेर और ½ एकड़ जोतनेवाले को २-२॥ सेर प्रोटीन-वाली खली देनी चाहिए।

अधिक प्रोटीनवाले चारे—किसारी या मटर १०-१५ सेर से अधिक न हो। रिजका १०-१२ सेर से अधिक न दिया जाय, क्योंकि यह गर्म बहुत होता है। गाय को यह ५ सेर से अधिक न देना चाहिए। सरसों २०-२५ सेर तक दी जा सकती है।

बरसीम—सबसे अच्छा चारा है। मटर और उड़द बादी हैं। ग्वार गर्म और क़ब्ज करती है। यह दूधवाले पशु को ६-७ सेर से अधिक न दी जाय।

यह मिस्र से लाकर यहाँ बोया गया है। खेत को बलिष्ठ बनाता है। पशुओं के लिये बहुत रुचिकर चारा है। हर प्रकार की भूमि में यह तैयार होता है। दुमट भूमि इसके

लिये बहुत अच्छी है। हल्की नोनदार भूमि में भी यह तैयार हो जाता है।

संजी और जई भी बहुत अच्छे चारे हैं। मोठ, लोबिया, मूँग और चना १५-२० सेर तक दिया जा सकता है। दूध-वाले पशु को हरा चना १० सेर से अधिक न दिया जाय। मोठ ६-७ सेर से अधिक न दी जाय। बरसीम ८ सेर और लोबिया आदि ५ सेर से अधिक सूखा न देना चाहिए। सूखी जई, दूब, गिनी घास भरपेट खिला सकते हैं। ये उत्तम चारे हैं।

साधारण प्रोटीनवाले चारे—गेहूँ का भूसा, रागी का भूसा, जौ और जई का भूसा, ज्वार की करबी, ये चारे भरपेट दे सकते हैं। बाजरे की करबी, धान का पुआल, मक्का की करबी, ये रद्दी चारे हैं।

प्रोटीन खली, दाना—मूँगफली, बिनौला, तिल, अलसी, सरसों और तरे की खली २-२½ सेर देनी चाहिए। सरसों और तरे की खली बरसात में न देनी चाहिए। इनमें अधिक प्रोटीन होता है।

दाना—किसारी, काली मटर, लोबिया, चपरा, उड़द, मसूर, मटर, १-१½ सेर से अधिक न दिया जाय।

बिनौले की खली, मोठ का दाना, अरहर का दाना २-२½ सेर तथा ग्वार और चने का दाना ४-५ सेर तक दिया जा सकता है।

ज्वार और मक्का क़ब्ज़ करती है। अतः २-२½ सेर से

अधिक न हो जाय। उबले बाजरे का दलिया, रागी, चावल के कण, गुड़ और शीरा १-२ सेर देना चाहिए।

प्रथम श्रेणी का खली-दाना ऽ१ सेर अधिक प्रोटीनवाले ऽ१॥ के समान होता है। इसी प्रकार प्रथम दर्जे का ऽ४ सेर चारा दूसरे दर्जे के ६ सेर चारे के बराबर है। और १२ सेर प्रथम श्रेणी का हरा चारा दूसरे दर्जे के १३ सेर हरे चारे के समान है। हरा चारा बहुत उपयोगी होता है। इसे अवश्य देना चाहिए। इसमें विटामिन अच्छा होता तथा क्षार भी अधिक रहता है।

ग्वार, कुथी और दुढारी—ये पौष्टिक चारे हैं। इनकी हरी तरकारी मनुष्य भी खाते हैं। पशुओं के लिये खूब बलकारक हैं। जिन खेतों में बोए जाते हैं, उन्हें भी बलवान् कर देते हैं। इनकी सिंचाई भी कम करनी पड़ती है। इनके लिये भूमि हलकी दुमट हो, खेत चौरस हों, जिनमें पानी न रुके, नहीं तो फ़सल बिगड़ जाती है। ये खरीफ़ की फ़सल में बोए जाते हैं। चारे के लिये इन्हें एप्रिल या मई में ही बो देते हैं। इनका बीज १५ सेर प्रति एकड़ पड़ता है। इनकी बुआई चरी की तरह होती है। भूमि जोतकर बीज छिटका देते और ऊपर से पटेला दे देते हैं। १० दिन बाद पानी देना चाहिए। अधिक पानी हो, तो निकाल देना चाहिए। फूलने लगे, तब काटकर चारा देना चाहिए। दस सप्ताह में तैयार हो जाती हैं। इनका चारा प्रति एकड़ २०० मन होता है।

जई—इसका चारा सिंचाई अधिक लेता है। जहाँ जल अधिक हो, वहाँ इसका चारा अत्युत्तम है। घोड़ों के लिये इसका चारा बहुत मुफ़ीद है। साधारणतया यह सब पशुओं के लिये गुणकारी है। रबी की फ़सल की तरह ऑक्टोबर या नवंबर में बोई जाती है। इसका बीज प्रति एकड़ ५०-६० सेर डाला जाता है। जनवरी-फ़रवरी में तयार हो जाती है। चारे के लिये इसे एक से अधिक बार काट सकते हैं।

इसको एक बार काटकर फिर बढ़ने देने से इससे दाना भी ले सकते हैं। पर इस दशा में दाना पतला होता है। हरी जई काटकर सुखा ली जाय, तो पशुओं के लिये एक स्वादिष्ठ चारा होता है, पर इस देश में इसका चलन नहीं है।

ज्वार की चरी—फूल निकलने पर खिलानी चाहिए, नहीं तो इसमें विष का अंश रहता है। वर्षा की चरी कई पानी पड़ने के बाद खिलानी चाहिए। इसे भी एप्रिल-मई में बो सकते हैं।

मक्का की चरी—भुट्टे पकने से पहले खिलाना चाहिए। यह बहुत अच्छा चारा है। पशु बड़े चाव से खाते हैं। शीघ्र तैयार हो जाता है। हर समय बो सकते हैं।

समय—सितंबर से दिसंबर तक कभी भी बोया जा सकता है, परंतु ऑक्टोबर-नवंबर उत्तम समय है। इससे पहले बोने से गर्मी से फ़सल को हानि पहुँचती है, और देर से बोवें, तो बढ़वार कम होती है।

बीज—२० सेर प्रति एकड़ बोया जाता है। बोने से पहले १२ घंटे पानी में भिगोना चाहिए।

खरीफ़ के बाद, ज्वार या मक्का कटने पर, खेत को जोतकर पटेला दे दे, फिर इसमें २-३ इंच पानी भर दे, तब बीज को पानी में छिटककर बबूल या बेरी की डाल उस पर घसीटते हैं। इससे बीज मिट्टी में मिल जाता है। कपास की खड़ी फ़सल के बीच में भी बो देते हैं। इसमें बबूल या बेरी न घसीट कर पैरों से रौंद देते हैं। खेत में १२ घंटे से अधिक पानी न रहे। यदि रहे, तो नाली काटकर निकाल देना चाहिए। घास अधिक हो, तो निराई कर दी जाय। सिंचाई अधिक होनी चाहिए।

पैदावार—तीन-चार बार में प्रति एकड़ १७०-२०० मन तक हरा चारा होता है। खाद दी हुई भूमि हो, तो अच्छी उपज होती है। १½ मास में फूल निकल आता है।

३ इंच छोड़कर पौधे को काट लेते हैं। यह हर महीने चारा देता है। इसमें अफरे का डर है, अतः अधिक चारा न खिलाया जाय। भूसा या कुट्टी में मिलाकर देना चाहिए। वह भी ५-७ सेर से अधिक न दिया जाय। बोने का बीज अच्छा रहना चाहिए।

भरवारी, सेंगी और बागची—भरवारी जंगली पौधा है। उत्तरी भारत में साधारणतया और मुख्यतया पंजाब में खूब बोया जाता है। यह अच्छा चारा है। यू० पी० के

कृषि-विभाग में भी बोया जाता है। इससे खेत ताक़तवर होता है।

भूमि—सब तरह की दुमट उत्तम है। इसका बीज कड़ा होता है। जमाने के लिये भी इसकी सिंचाई की जाती है। इसमें अधिक सिंचाई नहीं की जाती। ५-६ बार काफ़ी है। फ़रवरी-मार्च में फूलने लगता है। इसे भी अधिक पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए। इससे अफ़रे का डर रहता है। अच्छा दाना, चारा और अच्छी देख-रेख तथा स्थान आदि का प्रबंध ही पशु की वृद्धि करता है।

पशुओं के रोग

खेती के लिये पशुओं का स्वस्थ होना अत्यंत आवश्यक है। खेती का दार-मदार उन्हीं पर निर्भर है। भारत में तो पशुओं के बिना काम ही नहीं चल सकता। खेत की जुताई इन्हीं के द्वारा होती है। कुओं से पानी निकालने में भी इन्हीं का उपयोग होता है। मड़ाई, बोझा ढोना, खेत में खाद डालना, बीज बोना आदि काम पशुओं के बिना हो ही नहीं सकते। अन्य देशों में ये काम मशीनों से लिए जा सकते हैं। पर भारत में न तो इतनी मशीनें ही हैं और न उनके जानकार ही, अतः यहाँ सदैव की प्रणाली में सोच-समझकर ही हेर-फेर किया जा सकता है। फिर दूध देने-वाले जानवरों का निर्वाह भी खेती पर ही निर्भर है, अतः जानवरों के स्वास्थ्य का भी उतना ही ध्यान रखना चाहिए, जितना मनुष्य अपना रखता है। किसान की असावधानी से पशु बहुधा बीमार हो जाते हैं, अतः उन रोगों का विवरण देना उचित प्रतीत होता है। इनकी देख-भाल के लिये दाना-चारा समय पर, उचित मात्रा में, देना चाहिए, न कम खाना दिया जाय और न अधिक। इन्हें सील से बचाया जाय। मच्छरों, मक्खों, डाँसों से इनकी हिफ़ाज़त की जाय। धूप,

वर्षा और सर्दी से भी बचाव करना ज़रूरी है। ज़हरीली घास ये न खाने पावें। इसी प्रकार जिन जानवरों में छूत की बीमारी हो, उनसे अच्छे जानवरों को अलग रक्खा जाय। मिलने से अन्य जानवरों में भी वही बीमारी फैल जाती है।

यहाँ कुछ बीमारियों के नाम दिए जाते हैं, जो पशुओं को बहुधा हो जाया करती हैं—

(१) रिंडरपेस्ट (मनुआँ व शीतला), (२) मुहाँ, (३) खुर-पका, (४) हेमोरेजिक (गलाघोंटू), (५) सेप्टी सिमिया (फूला), (६) हावेन (अफरा), (७) एंथ्रेक्सकारबोन (गरोंबसूत), (८) भेड़ों की चचक।

देहाती लोग इन बीमारियों का इलाज करते हैं। पर बीमारी की ठीक-ठीक पहचान न होने से ये लोग धोका खा जाते हैं, अतः बीमारी का निदान यहाँ दिया जाता है—

(१) मनुआँ—यह छूत की बीमारी है। जुगाली करने-वाले जानवरों में होती है। मुख्यतया गाय-भैंस को यह रोग अधिक होता है। इस रोग में जानवर सुस्त हो जाता है। काँपने लगता है। गर्मी बढ़ जाती है। रोम खड़े हो जाते हैं। आवाज़ में खाँसी होती है। कान लटक जाते हैं। गोबर में आँव पड़ जाता है। प्यास की अधिकता होती है। इस रोग का टीका लगवा देना चाहिए। दस्त हों, तो गुन-गुना पानी और घास में पतला दलिया दिया जाय।

• (२) खुर-पका रोग—यह रोग बरसात में होता है। खुर पककर कीड़े पड़ जाते हैं। कीड़े मारने के लिये फ़िनाइल अच्छी दवा है। मिट्टी का तेल, बोवई (वापत्री) की पत्ती, कलई का चूना मिलाकर और पीसकर लुगदी भरने से भी लाभ होता है।

तूतिया, हींग, कपूर, दही का तोड़ बराबर लेकर मरहम बना ले, तो भी इससे बीमारी को लाभ पहुँचता है।

(३) मुहाँ—यह बीमारी पक्षियों को भी होती है। इस रोग में जानवर काँपता है। मुँह में छाले पड़ जाते हैं। गायों के थेन में भी छाले हो जाते हैं। मुँह, सींग और पैर गरम हो जाते हैं। राल गिरने लगती है। इस रोग में जानवर की सफ़ाई का पूरा ध्यान रक्खे। यह भी छूत की बीमारी होती है। उसे छाया में बाँधे। मुँह को फिटकरी के पानी से धोवे। जख़्मों में सुहागा और फिटकरी लगावे। घाव अधिक हों, तो उन्हें साफ़ करके मीठा तेल, कपूर, खरिया मिट्टी, कोयला, फिटकरी और नीला थोथा मिलाकर लगावे। यदि मक्खी न बैठने पावेंगी, तो कीड़े न पड़ेंगे। हरी नर्म घास खिलावे, और पतला माड़ पिलावे। पानी में शीरा, गुड़ या राब घोलकर दे। कभी-कभी नमक घोलकर भी पिलावे। अच्छा हो जायगा। गुड़ पुराना ꠰१, सौंफ ꠰ एक सेर पानी में औट कर पिलावे।

(४) चेचक—यह भी छूत की बीमारी है। बीतारी के

जानवर को और जानवरों से अलग रक्खे। इस रोग में जानवर सुस्त हो जाता है। मुँह गर्म तथा लाल हो जाता है। कफ और लार गिरने लगती है। कँपकँपी होती है। कान लटक जाते हैं। खून और आँव मिला पतला गोबर होता है। जीभ, मुँह, नाक, आँख में छाले। कमर पर मुँह डाले सुस्त पड़ा रहता है। ये ही इस बीमारी के चिह्न हैं। इस रोग में अलसी या चावल के माँड़ में नमक मिलाकर पिलावे। न पिए, तो नाल से दे देना चाहिए।

एक-एक छटाँक हर, बहेड़ा, आँवला दो सेर पानी में काढ़ा बना ले। जब आधा पानी रह जाय, तब पिलावे। लाभ होगा।

कच्ची हल्दी ४ तोला, ४ तोला गुड़ के साथ दिन में ३-४ बार दे, तो चेचक रुक जाती है।

कंटकारि की जड़ के टुकड़े करके २१ काली मिर्च के साथ पीसकर दे, तो लाभ होगा।

बीमारी की दशा में चावल का माँड़, जौ का रँधा दलिया और हरी दूब दे।

(५) खाँसी—इससे जानवर दुबला हो जाता है। खाना-पीना अच्छा नहीं लगता। आँख और नाक से पानी गिरने लगता है।

दवा—अडूसा के पत्तों का रस आध पाव गुड़ के साथ पीसकर दे। गले में घाव हो, तो लोहे को तपाकर सेक करे।

(६) अकड़ा—शरीर अकड़ जाता है। जानवर चल-फिर नहीं सकता। दवा—ऽ= अलसी, ऽ। तेल सरसों, सोंठ ऽ= इन सबको आधा सेर पानी में घोट-छानकर पशु को दे। प्यास लगने पर नमक-मिला पानी पिलावे।

(७) अफरा या पेट फूलना—यह रोग अधिक खाने से होता है। इसमें रोंथ करना बंद हो जाता है। पेट फूल जाता है।

दवा—चीनी खाँड़ और तेल की नाल देने से दस्त आकर लाभ होता है। या आध पाव पिसी राई गर्म पानी में मिलाकर पिला दे।

(८) पतले दस्त—बहुधा गर्म चीज़ खाने या गर्म पानी पीने से पतले दस्त होने लगते हैं। इसमें चावल का माँड़ और जौ का आटा दे।

(९) सर्दी लगने पर—रोम खड़े हो जाते हैं। इस दशा में मेथी ऽ=, चाय की पत्ती ३ छटाँक, अजवाइन ऽ= और ऽ॥ गुड़ पानी के साथ औटाकर देने से लाभ होता है।

(१०) साहू रोग—इस बीमारी में गाय, भैंस के थन लाल हो जाते और वे लँगड़ाकर चलने लगते हैं। इस दशा में ३ दिन तक ऽ॥ दही के साथ ऽ। तिल्ली के तेल की नाल देने से लाभ होगा।

(११) थन मारा जाने पर—गाभिनी को ऽ। सरसों व तिल का तेल नाल से हर मास की शुक्ल पक्ष की दुइज के दिन बियाने तक देता रहे।

(१२) गलफूला—ज्वर के साथ कानों और जबड़ों के नीचे गाँठें होकर गले में सूजन हो आती है। ऐसी दशा में साँस लेनेवाली नली को बचाकर सूजी जगह को गर्म लोहे से दाग दे। आध सेर गर्म पानी में ६ माशे फिटकरी मिलाकर मुँह धोवे, और गंधक की धूनी दे।

(१३) पशु के बाल झड़ गए हों, तो पानी में तिल पीसकर लेप करे।

(१४) यदि कहीं घाव हो गया हो, तो गधे की लीद पीसकर लगावे।

(१५) बैल के कंधे पर बोझ से सूजन या घाव हो, तो ३ माशे अफ़ीम, १ तोला हल्दी सरसों के तेल में मिलाकर लगावे। सरसों का तेल न हो, तो तिल्ली या नीम का तेल भी लिया जा सकता है।

(१६) पशु के शरीर का कोई भाग जल जाय, तो प्याज़ का पानी या केले के पेड़ का रस लगावे।

(१७) पशु की आँखों से पानी आवे, तो त्रिफला के जल से धोवे।

(१८) पशु की जीभ पर काँटे हो गए हों, तो हल्दी और नमक़ मिलाकर दिन में २-३ बार लगावे।

(१९) पशु के अंग में जुएँ या चींचड़ पड़ जायँ, तो नमक ४ तोला, सरसों का तेल ४ तोला, मिट्टी का तेल १ तोला मिलाकर लगावे।

(२०) घास या चारे में जहरीला कीड़ा खा जाने से बेहोश हो जाय, तो २ सेर पानी में ॥ सेर सज्जी मिलाकर पिलावे।

(२१) पशु की जीभ पर घाव या छाले हों, तो पीपल की छाल की भस्म लगावे, या पक्की ईंट से रगड़ दे।

(२२) मूर्च्छा-रोग हो, तो तेल के साथ लहसुन खिलावे।

(२३) ढरका रोग होने पर दोनो सींगों के बीच के गड्ढे में चार-पाँच दिन तक हर रोज रेंडी का तेल भरे।

(२४) गाय-भैंस के थन में दाने पड़ने या घाव होने पर मक्खन या गिरी का तेल दिन में दो-तीन बार लगावे।

(२५) हेमोरेजिक सेप्टी सिमिया (गला-घोंटू) रोग होने पर गले में सूजन होने और साँस का आना-जाना रुकने से मवेशी मर जाते हैं। यह रोग वर्षा या माहोट के दिनों में होता है। इस दशा में पशु को ऊँची जगह पर बाँधे, जहाँ सील न हो। इस रोग में नाक और आँख की झिल्ली बैंगनी पड़ जाती है। बुखार जोर से होता है। नाक से पीला मवाद निकलता है। पेशाब में खून आता है। इस रोग का तुरंत इलाज होना चाहिए। बुखार तेज न हो, तो लाहौरी नमक ६ छटाँक, एलुआ १ छटाँक, सोंठ १ छटाँक, शीरा ४ छटाँक १½ सेर गर्म पानी में पिलावे, या अलसी, मीठा और जमाल-गोटा का तेल ३० बूँद और सब ५ छटाँक उसे पिलावे।

बाग़बानी

भूमि

बग़ीचे के लिये भूमि का चुनाव बड़ी सावधानी से करना चाहिए। आस-पास की भूमि से बग़ीचे की धरती कुछ ऊँची होनी चाहिए, जिससे पानी जमा न हो सके। जहाँ पानी भरा रहता है, वह भूमि बग़ीचे के लिये ठीक नहीं होती। फलदार पौधों के लिये दुमट मिट्टी अच्छी होती है। बाग़ के समीप कोई जलाशय हो, जिससे बग़ीचे के लिये सुगमता से जल मिल सके।

साग-सब्ज़ी के लिये १-१॥ हाथ गहरी भूमि की जाँच करना पर्याप्त है, पर बग़ीचे के लिये धरती की जाँच ३-४ हाथ खोदकर करनी चाहिए। और, एक ही स्थान की परीक्षा न करके कई स्थानों की जाँच करनी चाहिए। बोरिंग करके देखे कि कंकड़, बालू या ठोस चिकनी मिट्टी तो नहीं है। कीचड़ और बालू अजैव पदार्थ हैं। यदि बग़ीचे के लिये भूमि अच्छी न हो, तो कमर तक मिट्टी पलटकर उसमें खाद मिला देनी चाहिए। चूना और ज्वलनशील पदार्थ जैव होते हैं। चूना अधिक हो, तब भी बाग़ नहीं लगा सकते। ज्वलनशील पदार्थ मिट्टी के प्राण हैं।

सिंचाई का प्रबंध अच्छा किया जाय। कुआँ, ताल या ट्यूब-वेल में से कोई प्रबंध, जो सुगमता से हो सके, करना चाहिए। क्योंकि पौधों में पानी देना और नहलाना, दोनो ही आवश्यक कार्य हैं।

बग़ीचे की धरती पर छाया नहीं पड़नी चाहिए, इसका अवश्य ध्यान रक्खा जाय। इससे बढ़वार रुक जाती है।

जिस भूमि में नाइट्रोजन, फ़ासफ़ोरस, पुटाश और चूने का अंश आवश्यक मात्रा में हो, वही अच्छी धरती है। पुटाश या फ़ासफ़ोरस न होने या कम होने से पौधा बढ़ता तो है, पर फल कम आते हैं, अतः खाद अवश्य देनी चाहिए।

फिर यह जाँच करनी चाहिए कि बग़ीचे की भूमि में कौन-कौन-से फल अच्छे हो सकते हैं। उन्हीं फलों के पौधे लगाने चाहिए।

इसके बाद चारो ओर से बग़ीचे का घेरा बना देना चाहिए। यह मिट्टी की खाईं डालकर बना लिया जाय, तो अच्छा है। और, खाईं पर नरकट, जंगली गुलाब, काग़ज़ी नीबू, लता कस्तूरी, रामबाण (केतकी) में से किसी की लाइन लगा दी जाय, तो घेरा भी मजबूत हो जायगा, और उससे कुछ आय भी हो सकती है।

घेरे के किनारे १०-१२ हाथ के अंतर पर शीशम, ताड़, चंदन, खजूर आदि वृक्ष लगाए जा सकते हैं। बड़े पेड़ लगाते

समय एक पेड़ से दूसरे पेड़ के अंतर के अनुपात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। किनारे पर आम, कटहल, जामुन (फरेंदा), लोची, शहतूत, बेल आदि के पेड़ भी लगाए जा सकते हैं।

बड़े बग़ीचों के बीचोंबीच दो-डेढ़ हाथ चौड़ी चौपड़ की सड़क अवश्य रहनी चाहिए। यह चौड़ाई बग़ीचे के विस्तार के अनुपात से होनी चाहिए। यह सड़क भूमि से ८-१० इंच ऊँची अवश्य होनी चाहिए।

यदि किसी को व्यवसाय की दृष्टि से बग़ीचा बनाना अभीष्ट हो, तो भूमि ३०-४० बीघे से कम न होनी चाहिए, नहीं तो अधिक लाभ न होगा। इस व्यापार में तभी लाभ हो सकता है, जब फल अधिक संख्या में पैदा हों, और उनकी क़िस्में भी अधिक हों, तथा प्रत्येक फ़सल की पैदावार पर्याप्त मात्रा में की जा सके।

मिट्टी

विदेशों में, मुख्यतया डेनमार्क, अमेरिका में, रासायनिक प्रयोग जाननेवाले विद्वान् बहुत-से होते हैं। प्राचीन काल में भारत के किसान भी इन बातों से परिचित थे, पर अब वह दशा नहीं है। इसलिये रसायनशाला में मिट्टी भेजकर जाँच करा लेनी चाहिए। देश के नेताओं को चाहिए कि वे किसानों में इस भावना का प्रसार करें, जिससे हमारे देश में भी खेती की दशा में सुधार किया जा सके।

वर्षा में ऊँची भूमि की मिट्टी नीचे बह जाती है, और तहें पड़ जाती हैं। यदि तहों की मिट्टी लाल हो, तो समझ लेना चाहिए कि उसमें लोहे का अंश अधिक है। गँदला या मटमैला रंग होने से बालू की मात्रा अधिक समझनी चाहिए। गहरा काला रंग मिलने पर औद्भिज्ज मिट्टी की विशेषता माननी चाहिए, और कम काली होने पर चिकनी मिट्टी समझना चाहिए। जिस मिट्टी में बालू अधिक और चिकनी मिट्टी कुछ कम हो, वह दुमट कहलाती है। इसे बाँगर मिट्टी भी कहते हैं। चिकनी या बलुआ मिट्टी फलों के लिये उपयुक्त नहीं होती।

भूमि में जल-परिमाण जितना अधिक होगा, वही अच्छी भूमि है। ताप भी होना चाहिए। इसके बिना भूमि शक्ति-हीन रहेगी। भूमि की अनेक जातियाँ हैं—चिकनी, बलुआ, दुमट, बलुआही दुमट, दुधिया चिकनी, दुधिया चुनौट, चुनौट, औद्भिज्ज, लोनी और सिवारी। मिट्टी की ये ही क़िस्में होती हैं।

चिकनी—लसीली, चिकनी मिट्टी, जिसमें ६०% एल्युमिना (सफ़ेद रंग का चूरा), २०% बालू, ½% या १% औद्भिज्ज मिट्टी रहती है। इसे कुछ गीली में जोतना चाहिए।

बलुआ—८० % बालू, १० % चिकनी मिट्टी। इसमें बड़े दानेवाली मिट्टी ख़राब होती है। यह प्लास्टर के काम की होती है। छोटे दानेवाली में औद्भिज्ज पदार्थ मिला दें, तो ककड़ी,

फूट, तरबूज, खरबूजा और परवल की फ़सल अच्छी हो सकती है। पर बड़े वृक्षों के लिये यह नितांत अनुपयुक्त है।

दुमट—साग-सब्जी और बाग़-बगीचे के लिये सबसे अच्छी मानी जाती है। इसमें ४०-५०% बालू, १०-५०% चिकनी मिट्टी, ५% चूना, ५% औद्भिज्ज होता है।

बलुआई दुमट—५०-८०% बालू, २०-३०% चिकनी मिट्टी। यह रबी की फ़सल के लिये अच्छी जमीन होती है। यह धूप में जल्द तपती है।

दुधिया चिकनी—२०-३०% बालू, ५०-८०% चिकनी मिट्टी। यह अच्छी जमीन कहलाती है। इसमें सब प्रकार की खेती की जा सकती है।

दुधिया चुनौट—इसमें ५ से २०% तक चूना होता है। इसमें कुछ फ़सलें हो सकती हैं।

चुनौट—इसमें २०-८०% तक चूना होता है।

जैव या औद्भिज्ज मिट्टी—यह खेती के लिये सबसे उपयोगी है। खेती और बाग़बानी के लिये यह समान रूप से आवश्यक और लाभदायक समझी जाती है।

लोनी या ऊसर—इसमें शोरा और नमक अधिक रहता है, इस कारण इसमें किसी प्रकार की पैदावार नहीं होती।

सेवारी मिट्टी—इसका रंग काला होता है। इसे मिलाने से ख़राब भूमि भी सुधर जाती है। यह अत्यंत उपयोगी और उर्वर पदार्थ है। फलदार वृक्षों के लिये सबसे अच्छी भूमि

दुखिया चिकनी या चिकनी मिट्टीवाली होती है। यदि १०-१२ इंच की गहराई के बाद ही दूसरी तह में बालू या कंकड़ हों, तो वह भूमि ख़राब है। ऐसी धरती में बाग़ या बग़ीचा न लगाना चाहिए।

जिस जगह ५-६ हाथ की गहराई तक अच्छी मिट्टी हो, उसमें पेड़ लगाए जा सकते हैं। ऐसी भूमि में बग़ीचे या बाग़ हो सकते हैं। फलों के लिये फ़ासफ़ोरस, एसिड, पुटाश और चूना होना आवश्यक है। इन्हीं की ख़ूराक पौधों के लिये उपयोगी और फलोत्पादक होती है। भूमि में कौन-कौन-से पदार्थ मिले हुए हैं, और किस अंश में हैं, इसकी जाँच नीचे लिखे अनुसार की जा सकती है—

(१) मिट्टी सुखाकर तौलने से यदि कम हो जाय, तो समझना चाहिए कि उसमें उतना ही पानी का अंश है।

(२) यदि चूल्हे पर तवे द्वारा सूखी मिट्टी को गर्म करके लाल होने पर तौला जाय, उस समय जितना अंश कम निकले, उतना ही उस भूमि में औद्भिज्ज अंश समझना चाहिए।

(३) भूमि की मिट्टी जितनी हलकी होगी, उतनी ही अच्छी समझनी चाहिए।

(४) मिट्टी को पानी में घोलकर बहाया जाय। जो मिट्टी बह जाती है, वह चिकनी मिट्टी है, और जो नीचे तह में बैठ जाती है, वह बालू होती है। इस प्रकार हम चिकनी मिट्टी और बालू का अनुपात निकाल सकते हैं।

बग़ीचा लगाने से पहले भूमि अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिए। जैसे पेड़ लगाने हों, उसी के अनुसार खाद देनी चाहिए। प्रत्येक प्रकार के पौधे के लिये अलग-अलग प्रकार की भूमि तथा खाद और प्रणाली प्रयोग में लानी पड़ती है। अतः यहाँ कुछ मुख्य-मुख्य फलों के विषय में भिन्न-भिन्न वर्णन दिया जाता है, जिससे किसान उनकी शैली और संरक्षण की रीति समझकर बग़ीचा लगाते समय उनका उपयोग कर सकें।

आम

भारत में आम का फल सबसे उत्तम माना जाता है। होता भी बहुत है। यह बहुत शुभ माना गया है। इसका फल, मजरी और पत्ते, सभी का शुभ कार्य में प्रयोग होता है। आर्य-संस्कृति में इसे एक मुख्य स्थान मिला हुआ है। आम के फल को अमृतफल कहते हैं। इसकी मंजरी खाने से चेचक या बसंत-रोग नहीं होता। फलों को लोग बड़ी रुचि से खाते हैं। इसका अचार, मुरब्बा और अमावट भी बनाते हैं।

पौधे लगाने में समीप के फल का भी प्रभाव पड़ता है। यदि अच्छे फल के आस-पास निम्न श्रेणी के फलों के पौधे लगा दिए जायँ, तो अच्छे पौधे का गुण भी क्षीण पड़ जायगा, और वह साधारण श्रेणी का बन जायगा। इसलिये जहाँ तक हो सके, बाग़ में अच्छी नस्ल के ही फल लगाए जायँ। बीजू पौधे ७-८ वर्ष में फल देते हैं, और क़लमी आम

गहरे रसदार और मीठे होते हैं। क़लमें कई प्रकार की होती हैं। उनमें जोड़-क़लम सबसे आसान और अच्छी होती है।

बीजू उत्तम पौधे दो-तीन वर्ष के होने पर क़लमी किए जाते हैं। जब वह पौधा एक वर्ष का हो जाय, तभी ३-४ जड़ों-समेत लेकर दूसरे गमले में लगा देते हैं। जब जड़ मजबूत हो जाय, तब फिर दूसरी जगह लगाते जायँ। जड़ के नीचे ईंट रख दें, तो अच्छा है। इससे जड़ें नीचे न जाकर ऊपरी तह में ही फैलने लगती हैं। असाढ़ में बधिया पौधे गमलों में लगा दिए जायँ। जड़ पक्की होने पर बीजू की जड़ से ७-८ इंच ऊपर जोड़-क़लम किया जाता है। क़लम की टहनी बीजू कांडों से मोटी न होनी चाहिए।

डाल और कांड की दो-तीन इंच तक छाल हटा देनी चाहिए। ½ इंच गहराई तक छाल निकाल दी जाय। फिर पाट, सन और नरम रस्सी से दोनो को बाँध दिया जाय। इनके जुड़ने में १-१॥ मास लग जाता है। क़लम लगाने से २-३ दिन तक खूब सिंचाई की जाय, उसके १-१॥ मास के बाद क़लम को थोड़ा काट दे, फिर १-१½ मास बाद कुछ और काट दे, उसके बाद मूल पौधे की ऊपरी शाखा काट दी जाय। थोड़े ही दिनों में नए अंकुर निकलकर पौधा बढ़ने लगता है।

आम के पौधे १८-२० हाथ के अंतर से लगाए जाने चाहिए। उसके गड्ढों का विस्तार २×२×२॥ हाथ हो। फिर १०-१५ दिन बाद उसमें खाद, हड्डी का चूरा और राख दस सेर

भर दें, फिर उसमें क़लमी पौधे रख दिए जायँ। क़लमी आम क्वाँर-कार्त्तिक में लगाए जाते हैं। क़लम लगाते समय यह ध्यान रहे कि पौधे झुके हुए, टेढ़े-मेढ़े न हों, और न चुटीले हों।

प्रत्येक पौधे में प्रतिवर्ष १० सेर गोबर की खाद, २ सेर खली की खाद, २ सेर हड्डी का चूरा और ५ सेर राख देनी चाहिए। जब मंजरी लगने लगे, तब अधिक सिंचाई की आवश्यकता है। एक पेड़ में प्रतिवर्ष २००० फल मिल सकते हैं, जिससे ५००) बीघे तक आय हो सकती है। इस प्रकार आम का बग़ीचा बहुत वर्षों तक अच्छी स्थायी आमदनी दे सकता है।

पपीता

पपीता भी हमारे लिये बहुत ही उपयोगी फल है। यह बहुत ही स्वास्थ्यकर फल है। इसमें पाचक और रेचक दोनो गुण हैं। इसका आदि स्थान दक्षिणी अमेरिका है। सिंहल और सिंगापुर में पपीते के फल अच्छे होते हैं। इनसे भी अच्छे पपीते मैसूर और राँची में होते हैं।

इसका बीज धूप में नहीं सुखाया जाता, छाया में ही सुखाना चाहिए। इसके सुखाने में बड़ी सावधानी बर्तनी चाहिए।

राँची, दुमका, हजारीबाग़, संथाल परगना, गोहाटी और मैसूर इसकी खेती के लिये अच्छे स्थान हैं।

इसके लिये मिट्टी भुरभुरी करके बीज को ½ इंच नीचे मिट्टी में गाड़ देते और मिट्टी से दबा देते हैं। ऊपर से सूखा

पुआल बिछा देते और पानी छिड़क देते हैं, और बराबर भूमि को सींचते रहते हैं। जब पौधा ४-५ इंच का हो जाता है, तब उसे उखाड़कर दूसरी जगह की तैयार की हुई भूमि में रखना चाहिए। ८-१० इंच का होने तक इसकी चटाई आदि से ढककर बड़ी हिफ़ाज़त करनी चाहिए।

खुली ज़मीन में लगाने से पहले भूमि को तर कर देना चाहिए। चैत का बोया बीज जेठ तक २-२॥ हाथ का हो जाता है।

बाग़ में ५-६ हाथ की दूरी पर गड्ढे खोदे जायँ। इन गड्ढों का घेरा एक हाथ का होना चाहिए। गड्ढे खोदने के बाद ५-६ दिन तक उन्हें खुला छोड़ देना चाहिए, फिर उन्हें साफ़ करके उनमें खाद या राख देनी चाहिए।

लगाते समय पौधे को साफ़ करके नीचे के पत्ते छाँट देने चाहिए। पाश्चात्य विद्वानों ने कच्चे पपीते से पेपाइन-नामक दवा तैयार की है, जो अच्छी, लाभप्रद और पुष्टिकारक है। स्वास्थ्यप्रद, पाचक और कृमिनाशक भी है। इसकी खेती से आय, भी अच्छी हो सकती है। यदि बड़े स्केल पर खेती की जाय, और उसे वैज्ञानिक ढंग से तैयार किया जाय, तो अच्छा लाभ हो सकता है।

नारंगी या संतरा

संतरा भारत का फल है, परंतु केलिफ़ोर्नियाँ में इसका फल सबसे उत्तम होता है। यह बड़ा ही गुणकारी फल है।

इसका रस पाच्य है और शक्तिवर्द्धक भी। जहाँ वर्षा अधिक होती है, वहीं इसकी खेती अच्छी होती है। इसकी क़लम भी उत्तम फल देती है। बिजौरे पर यदि संतरे की क़लम लगाई जाय, तो फल बहुत अच्छा होता है। १।।-२ इंच मोटी शाख़ जब हो जाय, तब क़लम लगानी चाहिए। क़लम के अंश पर क़लम उतारने का मसाला लगाकर जटा या केले का पत्ता लपेट दे। सड़ा गोबर, खली या चिकनी मिट्टी इसकी जड़ में दे दे। इसे बाँधकर तर रक्खे, और अंकुर निकलने पर थोड़ा-थोड़ा काटते जाना चाहिए।

अकुवा क़लम लगाना कठिन होता है।

नागपुरी संतरा बारहा मास फल देता है। १४-१५ हाथ के अंतर पर पौधे लगाने चाहिए।

नैपाली, वाशिंगटन और नैवेल के संतरे अच्छी जाति के माने जाते हैं। सिलहट की नारंगी भी अच्छी जाति की होती है। इसमें सुगंध भी होती है। इसका पौधा ४-५ वर्ष में फलने लगता है।

इसकी खेती के लिये निम्न-लिखित खाद देनी चाहिए—

एक बीघे में २० मन गोबर की खाद देनी चाहिए। सलफ़ेट ऑफ़् पुटाश १० सेर, हड्डी का चूरा १ मन, नाइट्रेट ऑफ़् सोडा १ मन, चूना २० सेर और कसीस १० सेर दी जाय। ये चीज़ें खेत तैयार करते समय दी जानी चाहिए। इसकी खेती सिंचाई अधिक चाहती है।

हमेशा भोजन करने के २-३ घंटे बाद खाय। तंबाकू, गाँजा, चरस और सिगरेट पीनेवालों को जामुन बड़ा लाभप्रद होता है। इसकी खेती समतल भूमि में अच्छी होती है। पहाड़ों में अच्छा फल नहीं होता। इसकी खेती आम की तरह तैयार की जाती है। इसके क़लमी पौधे अच्छे होते हैं। इसकी क़लम आषाढ़ में लगाई जाती है। डाल-क़लम या जोड़-क़लम दोनों ही अच्छी होती हैं। २ वर्ष का पौधा क़लम के लिये ठीक होता है। क़लमी पौधा स्थायी रूप से लगने के पीछे ३-४ वर्ष में फल देने लगता है। पर पहले वर्ष फलों को पकने नहीं देना चाहिए।

इसमें फूल फागुन या चैत में आता है, और जेठ-आषाढ़ में फल लगने लगते हैं। जब पेड़ फलने लगे, तो उसकी जड़ें खोल देनी चाहिए, जिससे जाड़ों में धूप और हवा भले प्रकार लग सके। उसके ८-१० दिन बाद खाद और मिट्टी मिलाकर जड़ें ढक देनी चाहिए। जब तक पौधे बड़े न हों, तब तक पानी देते रहना चाहिए। इसकी फ़सल अच्छा लाभ दे सकती है।

कटहल

यह भी भारत का ही फल है। कच्चे की तरकारी बनाते और पकने पर इसके कोए खाते हैं। भारत में आने पर योरपियन भी इसकी 'चाप' तथा 'कटलेट' आदि बनाते और बड़ी रुचि से खाते हैं। इसके कोए दो प्रकार के होते हैं—

एक जाति के कोए गीले और रसीले होते हैं, और दूसरी जाति के कड़े, जिन्हें खाजा कहते हैं। गीले कोओं का रस निचोड़कर दूध के साथ खाने में बहुत स्वादिष्ठ लगता है।

कोए खाते समय बीज की झिल्ली हटा देते हैं। यह पौष्टिक और बलकारक है तथा रेचक भी। शरीर और चित्त इसके खाने से प्रसन्न रहता है। परंतु गरिष्ठ होने से अधिक न खाना चाहिए। अधिक प्रयोग हैजा फैलाने का कारण बन जाता है। यों तो प्रत्येक फल को ताज़ी दशा में धोकर खाने का नियम है, परंतु कटहल के कोए तो अवश्य धो लेने चाहिए। मीठे और ताज़े कोओं में एक प्रकार की तीव्र सुगंध आती है। यह फल बाज़ार में खुला बिकने के कारण इस पर दिन-भर मक्खियाँ बैठती और बीमारी फैलाती हैं। इसका पेड़ बहुत मोटा हो जाता है। कभी-कभी इसके तने का घेरा ७-८ हाथ तक देखा गया है।

भूमि—इस फल के लगाने के लिये ऊँची और सूखी भूमि होनी चाहिए। जेठ-असाढ़ में अंकुरदान में इसके बीज उगाए जाते हैं। इसका बीज पुराना न होना चाहिए, और बीज के कोओं को सूखी राख में डुबोकर रखना चाहिए।

इसके पेड़ बाग़ में २०-२० हाथ की दूरी पर लगाए जायँ। गड्ढे का घेरा और गहराई ३ हाथ होनी चाहिए। इनमें गोबर की खाद और गोशाले का गला हुआ कूड़ा-करकट

भरना चाहिए। ये पौधे बरसात में लगाए जायँ। बड़े होने पर जखोरे से गड्ढे में रोपे जायँ। लगने के बाद वर्ष में दो बार बरसात के पहले जड़ों की मिट्टी गोड़ दी जानी चाहिए।

बड़े होने पर जब फल देने लगे, तब उपले की राख, गोबर की खाद और हड्डी का चूरा प्रतिवर्ष देना चाहिए। इसकी जड़ मूसला नहीं, झकरा होती है, इसलिये ये आँधी में जल्द गिर जाते हैं। इसकी जड़ और शाखें कभी नहीं छाँटनी चाहिए। यह पेड़ जितना ही अधिक मोटा होता है, उतना ही अधिक फल देता है। प्रतिवर्ष साधारण पेड़ ६०-७० फल दे जाता है। इससे अच्छी आय हो सकती है।

इसके कोए मूँगफली की भाँति भूनकर भी खाते हैं। इसकी लकड़ी भी अच्छी होती है। इनमें कीड़े बाधक होते हैं। इनसे सतर्क और सावधान रहना चाहिए।

लीची

यह भारत का फल नहीं है। चीन से इस देश में आया है। पर यहाँ की जल-वायु और मिट्टी इतनी अनुकूल है कि इसकी उपज सारे भारतवर्ष में होती है।

कच्ची लीची खट्टी होती और खाने योग्य नहीं है, अतः पकने पर ही खाई जाती है। लीची मीठी और सरस होती है। पर पचने में दुष्पाच्य फल है। यह पुष्टिकारक, उष्ण-वीर्य और रेचक होता है। इसे पेड़ से तोड़ने पर तुरंत न

खाना चाहिए। घंटे-दो घंटे ठंडे जल में भिगो दे, तब खाय। बिहार-प्रांत के मुज़फ़्फ़रपुर, हाजीपुर, दरभंगा, समस्तीपुर, पूसा, भागलपुर आदि स्थानों में बहुत अच्छी लीची होती है। युक्त प्रदेश, मद्रास, बंबई और बंगाल में भी लीची होती है। इसकी ४-५ क़िस्में हैं।

यह फल शीत-प्रधान और पहाड़ी स्थानों को छोड़कर सर्वत्र हो सकता है। इसके बीजू पौधे अच्छे नहीं होते। जोड़ और साँटा-क़लम तथा डाल-क़लम दोनो प्रकार की क़लमी लीची अच्छा और सरस फल देती हैं।

इसकी आम या नारंगी की तरह शाखा-क़लम नहीं उतारते। निर्वाचित डाल की छाल को तेज़ छुरी से सावधानता-पूर्वक पूर्व-वर्णित क़लम की रीति से काट देना और ८-१० दिन तक खुला छोड़ देना चाहिए। इसके साँटे की २ इंच छाल छील देनी चाहिए। काटने से किनारे पर कुछ सूखेगी, पर उसके किनारेवाली छाल गाँठ की तरह फूल जाती तथा सिकुड़ भी जाती है। छिली हुई डाल पर पैवंद का मसाला लगाकर ऊपर से चिथड़े लपेट देना चाहिए। इसमें सड़ी हुई मछली की खाद दे दी जाय, तो बहुत अच्छा है। इस पैवंद को सदैव तर रक्खे। यदि वर्षा कम हुई हो, तो हाँडी में जल भरकर बूँद-बूँद टपकने देते रहना चाहिए।

पैवंद लगने के १-१½ मास के भीतर इसमें कल्ले निकलने

लगेंगे। तब ठंडे समय में अथवा बदली के अवसर पर क़लमवाली डाल काट देनी चाहिए। फिर सायदार जखीरे में सरस मिट्टी में इस पौधे को रख दिया जाय। और, आगामी वर्षा में इस जखीरे से उठाकर बाग़ में यथास्थान रख दिया जाय।

जिन स्थानों में जाड़े और वर्षा की अपेक्षा गरमी तेज़ रहती और भूमि में बरसाती पानी नहीं जमा होता, तथा मिट्टी दुमट होती है, वहीं लीची की उपज अच्छी होती है, नहीं तो ज़मीन को खाद वग़ैरा देकर और ऊँचा करके उसके योग्य बनाया जाता है। उत्तरी और दक्षिणी भारत के समस्त समतल भाग में यह अच्छी तरह पैदा हो सकती है।

इसके पौधे आषाढ़-मास या कॉर-कार्त्तिक में लगाए जाते हैं। ये पौधे १४ हाथ की दूरी पर तथा २ हाथ के घेरे में, २ हाथ गहरे गड्ढे में लगाने चाहिए। इसके लिये प्रति बीघा १५ सेर चूना डालना चाहिए। यह लीचो के लिये आवश्यक जुज़ है, और अन्य खाद डालने से १-१½ मास पूर्व डालना चाहिए।

पौधा लगाने से पहले उक्त गड्ढों में मिट्टी, खली की खाद, सूखा गोबर, राख और हड्डी का चूरा भर देना चाहिए। इसके पौधे अधिक वर्षा में नहीं रोपने चाहिए। इससे जड़ों का कोमल भाग नष्ट हो जाता है। यदि भूमि कड़ी पड़ जाय, तो उसे गोड़ देना चाहिए। नए पौधों को तेज़ धूप से बचाया जाय। एक सप्ताह तक बहुत संरक्षण की

आवश्यकता होती है। वर्षा से पहले इसे गोड़ देना चाहिए। खाद डालने से पहले एक सप्ताह के लिये धूप और हवा खाने के लिये जड़ों को खोल देना चाहिए।

बड़ा पौधा दूर तक भोजन लेता है, अतः जड़ों को खोलने तथा गुड़ाई करने में भी इस विस्तार का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। फल आने के समय गोबर की खाद, १॥-२ सेर खली की खाद तथा इतना ही हड्डी का चूरा और राख प्रति पेड़ डालनी चाहिए। लीची आम के ही साथ फूलती फलती तथा मंजरी लाती है। यदि वर्षा कम हुई हो, तो फल लगते समय इसकी सिंचाई कर देनी चाहिए। क़लमी लीची ४-५ वर्ष में फलने लगती है। छोटे पेड़ में यदि फल लग जायँ, तो इन्हें तोड़ देना चाहिए। इन फलों को बढ़ने न देना चाहिए। एक पेड़ में ४-५ हज़ार तक लीची लगती हैं। फल पतली टहनियों-समेत गौद में तोड़ लिए जाते हैं। इसके फल बाँस की सीढ़ियों द्वारा अथवा अकसी से तोड़े जाते हैं। इसकी फ़सल अच्छी आय दे सकती है।

अमरूद

यह फल भारत का नहीं है। दक्षिणी अमेरिका में बहुत होता है। इसका संस्कृत नाम नहीं पाया जाता, इससे निश्चित होता है कि यह फल विदेशी है। पर कहाँ से भारत में आया, कुछ पता नहीं। फिर भी इसकी खेती सर्वत्र होती है।

इसके फल आकार-प्रकार में कई ढंग के होते हैं। कोई बड़ा, कोई छोटा, कोई गोल और कोई लंबोतरे अनेक प्रकार के मिलते हैं। इसी प्रकार इसकी त्वचा किसी की चिकनी और किसी की खुरदरी होती है।

भारत में इलाहाबादी अमरूद सबसे प्रसिद्ध है। बनारसी भी अच्छा होता है। आरा, सहसराम, गया, बलिया, गोरखपुर और ग़ाज़ीपुर में भी इसी जाति के फल होते हैं। यह फल शीत-वीर्य, श्वेतसार-विशिष्ट और लाभदायक होता है।

इसका सेवन सम, पित्त और वायु को शांत करता है। यह फल मस्तिष्क की गरमी को शमन करनेवाला है। रक्त-परिशोधक भी है, पर हज़म देर में होता है।

इसके पौधे बीज और क़लम, दोनो प्रकार से लगाए जाते हैं। ये शीत-प्रधान भूमि में नहीं होते। ग्रीष्म और समतल भूमि में इसकी खेती अच्छी होती है। यों तो दार्जिलिंग में भी इसका फल पैदा होता है, पर वहाँ इसकी उपज अच्छी नहीं होती। अधिक चिकनी और लसीली भूमि में कोई फ़सल अच्छी नहीं होती, पर अमरूद थोड़ी चिकनी मिट्टी में साधारणतया अच्छा फल देता है। दुमट और बलुआही मिट्टी में यह फल अच्छा फलता है।

अच्छे बीज होने पर भी सदैव फल अच्छे नहीं होते, पर क़लमी अमरूद ४-५ वर्ष में अच्छा फल देने लगते हैं।

इसके पौधे १५-२० हाथ के अंतर से, १।। हाथ घेरा और १।। हाथ गहरा गड्ढा खोदकर रोपने चाहिए। इनमें मिट्टी, खर-पात, गोशाला का बहारन, पशुओं का मल-मूत्र भर दिया जाय। बरसात के आरंभ में ही अमरूद लगाने चाहिए। भूमि सरस हो, तो ये पेड़ आश्विन-कार्त्तिक में भी लग सकते हैं।

इन पौधों को तेज़ धूप से बचाना चाहिए। इसकी डाल-क़लम बरसात में लगाई जाती है। और, १।।-२ मास में ये पौधे जखीरे के योग्य हो जाते हैं। फिर पोषण के बाद गड्ढे में लगा दिए जाते हैं। फूलने-फलने तक इनमें खाद नहीं देनी चाहिए, केवल कभी-कभी गोड़ते रहना चाहिए।

अमरूद वर्ष में दो बार फलता है, और आषाढ़ से भादों-क्वाँर तक पकता रहता है। इस बीच में फूल भी आते रहते हैं। इसकी दूसरी फ़सल अगहन में होती है।

फलों के पकने का समय समाप्त होते ही पूस-माघ में जड़ों की मिट्टी अलग करके जड़ें खोल देते हैं। १०-१५ दिन धूप लगने के बाद खाद देकर मिट्टी से जड़ें दबा देते हैं। खाद के बाद पौधों की सिंचाई करनी चाहिए। इससे अच्छी आमदनी होती है।

सेब

सेब एशिया के शीत-प्रधान देशों में होता है। जो भूमि ३ से ५ हज़ार फ़ीट तक ऊँची होती है, और पहाड़ी भाग

होते हैं, उसी धरती में सेब ख़ूब पैदा होता है। पश्चिमोत्तर भारत की समतल भूमि में दो जाति के सेब होते हैं। ये बिस्मार्क और क्राव-जाति के कहलाते हैं, पर यहाँ ये देशी सेब के नाम से प्रसिद्ध हैं। झालना भी एक प्रकार की सेब की जाति है। यह भी समतल भूमि में ख़ूब होता है।

सेब का फल खसिया की पहाड़ियों, शिमला और मंसूरी में ख़ूब होता है। बंगाल में बिलकुल नहीं होता, पर बिहार, युक्त प्रदेश और पंजाब में इसकी खेती होती है, और बाग़ लगाए जाते हैं।

यदि दुधिया दुमट सरस और मज़बूत हो, तो वहाँ भी यह फ़सल हो सकती है, परंतु कँकरीली, पथरीली और पहाड़ी भूमि में यह ख़ूब होता है। जहाँ बरसाती पानी जमा हो जाता है, उस भूमि में इसकी खेती नहीं हो सकती। सिंचाई में भी पानी रुकना न चाहिए, नहीं तो इसकी पौद मारी जाती है। मिट्टी के टीलों पर भी इसकी खेती अच्छी हो सकती है, पर भूमि उर्वर होनी चाहिए। यदि कमज़ोर हो, तो खाद आदि देकर उर्वरा भूमि बना लेनी चाहिए, तभी इसके पौधे बढ़ सकते हैं।

इसके पौधे १२-१४ हाथ के अंतर से लगाए जाने चाहिए। गड्ढे का घेरा दो हाथ का तथा गहराई भी दो हाथ की होनी चाहिए। इनमें सड़ी खाद और खली की खाद भरकर $\frac{3}{4}$ भाग को पूरा कर देना चाहिए। इसके पौधे जाड़े में लगाने

चाहिए। पौधे लगाने से एक मास पहले भूमि तैयार कर लेनी चाहिए। और, पौधों की जड़ों की मिट्टी बराबर पोली करता रहे। इसकी देख-भाल विशेष रूप से करनी चाहिए।

फागुन-चैत के महीने में इनमें फूल लगते हैं। इससे दो-तीन मास पहले ही डालें छाँट देनी चाहिए। और, सूखी डालें तोड़कर पौधे से अलग कर दे। ऐसा न होने पावे कि सारा पौधा ही निष्प्रभ और निस्तेज हो जाय। फूल लगने पर ७-८ दिन के लिये धूप और हवा जड़ों में पहुँचा देनी चाहिए, और जड़ें खोल देनी चाहिए। फिर दुमट मिट्टी के साथ खली की खाद का चूरा, लकड़ी का कोयला और हड्डी का चूरा देकर जड़ें ढक देनी चाहिए।

फूलने के बाद और फलों के पकने तक अच्छी सिंचाई होनी चाहिए। पकने पर सिंचाई बंद कर देनी चाहिए। जिस पौधे में फागुन में फूल लगता है, उसका फल बैसाख तक पक जाता है।

इसके पौधे दाब लगाकर अथवा जाड़े में क़लम तैयार करके लगाने चाहिए। यह फल मधुर-रस-विशिष्ट और अत्यंत स्वादिष्ठ होता है। योरप और अमेरिका में इसकी खेती खूब होती है। भारत में ग़रीबी के कारण इसे लोग खरीद नहीं पाते। इसमें विटामिन ए, बी और सी तीन प्रकार का पाया जाता है, अतः स्वास्थ्य के लिये अत्यंत उपयोगी है।

बेर

बेर इसी देश का फल है। यह दो प्रकार का होता है—(१) गोल, (२) लंबोतरा, नुकीला।

छोटे बेर पकने पर खाने योग्य होते हैं। इसकी चटनी आदि भी बनाते हैं। बंगाल में बेरों को सुखाकर बेर-चून बनाते हैं।

बेर के पौधे सदैव अच्छी जाति के लगाने चाहिए। इसकी क़लमें लगाने से बढ़िया फल पैदा होने लगता है। इन्हें पेवदी बेर कहते हैं। इसके पेड़ १५-२० हाथ ऊँचे और फैले हुए हों, तो खूब फलते हैं। इसकी क़लम बरसात में तैयार की जाती है, और क़लम के लिये उत्तम जाति के बीजू पौधे तैयार करने चाहिए। इनकी क़लम अँखुए से होती है। क़लम तैयार होने पर कुछ समय तक जखीरे में पाल-पोसकर असाढ़ के महीने में स्थायी रूप से बाग़ में रखते हैं। इसके पौधे साधारण देख-भाल और परवरिश से लग जाते हैं। इसमें खाद भी देनी चाहिए। इनमें क्वाँर के महीने में फूल आते और अगहन में फल पकने लगते हैं। बेर सुपाच्य है, पर अधिक खाने से सर्दी, खाँसी और जुक़ाम हो जाता है। यह फल मस्तिष्क के लिये लाभदायक होता है। मूत्रकृच्छ्र-रोग में इसका उपयोग किया जाता है।

अगहन-पूस के महीने में जमीन गोड़कर यथेष्ट पानी देने से फल अच्छा होता है। इसी समय इसकी जड़ को हवा

और धूप देने के लिये ८-१० दिन तक खुला छोड़ देना चाहिए, फिर खाद और मिट्टी मिलाकर उन्हें दाब देना चाहिए।

कीड़ों से बचाने के लिये जड़ में तूतिया का घोल डालना लाभप्रद होगा।

डाल-क़लम बरसात में तैयार की जाती है। १॥-२ मास में जखीरे योग्य हो जाते हैं। फिर अच्छे प्रकार पोषण के बाद स्थायी रूप से गड्ढे में रोपना चाहिए। फूलने-फलने तक खाद नहीं देनी चाहिए। केवल भूमि को गोड़ता रहे। बेर की फ़सल से भी किसान अच्छी आमदनी कर लेते हैं।

नीबू

यह फल खट्टा होते हुए भी स्वादिष्ठ और गुणकारी है। यह कई प्रकार का होता है, और पाचक, रुचि-वर्द्धक, दीपक, तृषा-हारक और विष-दोष-नाशक है। इससे अजीर्ण, अतीसार, आँव, श्वास, खाँसी और मतली दूर होती है। इसका अचार डालते हैं। दाल में निचोड़ते हैं। इसके अनेक अंश शरीर के कई भागों की पूर्ति करते हैं। इसके पेड़ छोटे-बड़े कई प्रकार के होते हैं। क़लमी पौधे और भी उपयुक्त होते हैं। बाग़ के किनारे-किनारे मेंड़ के पास लगाने से कटीली झाड़ी बन जाती है, और फल का भी लाभ होता है।

काग़ज़ी नीबू के पौधे ६-७ हाथ के अंतर से लगाने चाहिए। शरबती तथा जँभीरा-जाति के पौधे कुछ बड़े होते हैं। इन्हें १०-१२ हाथ के अंतर पर लगाना चाहिए। इनकी

दाब और डाल-क़लम दोनो ही तैयार की जा सकती हैं। इसके लिये गड्ढे खोदकर उसमें गोबर की खाद, हड्डी का चूरा और राख रोपने से १॥ मास पहले ही डालनी चाहिए। जब फल समाप्त हो जायँ, तब इसकी शाखें छाँट दी जाती हैं।

इसमें कई प्रकार के कीड़े हो जाते हैं। इनका प्रारंभ में ही उपाय कर देना चाहिए। डाल सूख गई हो, तो तुरन्त काट देनी चाहिए। फल आने पर सिंचाई करना आवश्यक है। एक पेड़ में ४००-६०० फल लगते हैं, और एक बीघे में १००-१२५ पेड़ लगाए जाते हैं। इससे अच्छी आय हो सकती है। जनता में इसकी काफ़ी खपत रहती है।

अनार

भारत का पश्चिमोत्तर प्रांत, काश्मीर, अफ़ग़ानिस्तान और अरब इसका आदि स्थान है। ये तीन प्रकार के होते हैं—(१) बेदाना, (२) मस्कट, (३) अनार।

जो भूमि ठंडी, सीलवाली होती है, उसमें अनार नहीं होता। सूखी और नीरस भूमि में यह फल ख़ूब फलता है। इसकी जड़ भूमि की सतह के पास फैलने से फ़सल अच्छी होती है, इसलिये पौधे के नीचे २॥-३ हाथ की गहराई पर ईंट रख देते हैं। इसके गड्ढे खोदकर खाद मिली मिट्टी भर देनी चाहिए।

भूमि तैयार करते समय ४-५ मन चूना की बीघे के

हिसाब से डालना चाहिए। इसके गड्ढे २॥-३ हाथ के घेरे-वाले और इतने ही गहरे होने चाहिए।

इसका पौधा बीज और क़लम दोनो प्रकार से लगाया जाता है। दाब, डाल और जोड़, तीनो क़लमें इसमें उपयोग होती हैं। ये क़लमें बरसात में लगाते हैं। अंकुरवान में रखने के बाद जखीरे में पालन किया जाता है, और १ वर्ष बाद गड्ढे में रखना चाहिए। इसके पौधे १०-१२ हाथ के अंतर पर लगाए जाते हैं, और जरूरत के अनुसार सिंचाई करनी चाहिए।

इसमें गोबर की खाद और हड्डी का चूरा मिलाकर डालना चाहिए। खाद डालने के बाद सिंचाई करना आवश्यक है। प्रारंभ में पौधे को तेज धूप से बचाना चाहिए। मूसला जड़ का अग्रभाग काटने पर फल अच्छा फलता है। फूल लगने प्रारंभ होने से लेकर फल लगने तक सिंचाई नहीं करनी चाहिए। पर फल लगने पर सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

इसके तने और डालों में कीड़े लगने का डर रहता है, अतः उनसे सावधान रहना चाहिए। इसके फलों को कीड़े खराब कर देते हैं, तितलियाँ अंडे धर देती हैं, अतः इन पर कपड़ा बाँध देना चाहिए। एक पेड़ पर १०० फल हो सकते हैं, और एक बीघे में ५०-६० पेड़ लगाए जाते हैं। इस प्रकार इसकी खेती बहुत लाभप्रद हो सकती है।

लुकाट

यह भारतीय फल नहीं है, पर यहाँ इसकी खेती खूब होती है। यह मीठा और स्वादिष्ठ फल है। कुछ खट्टा होता है। इसे भोजन के बाद खाना चाहिए। यह चीन, जापान से भारत में आया है। पत्ते रूखरे होते हैं। इसका पेड़ २५-३० हाथ ऊँचा होता है। दुमट और बलुआ ही मिट्टी में इसकी फ़सल अच्छी होती है। समतल भूमि में बंगाल से पंजाब तक सर्वत्र इसकी खेती होती है। इसके पौधे १५-१६ हाथ के अंतर पर लगाए जाते हैं। इसके लिये गड्ढे २॥ हाथ के घेरेवाले और इतने ही गहरे होने चाहिए। इसके बीजू पौधे अच्छे नहीं होते। दाब और डाल-क़लम बरसात में की जाती है। क़लम के बाद १ वर्ष जखीरे में रक्खे, तब गड्ढे में स्थायी रूप से रक्खा जाय। क़लमी पौधे ३-४ वर्ष में फल देने लगते हैं। चैत-बैसाख में फल पकते हैं। कहीं-कहीं इसमें ३ बार तक फूल आता है, पर अगहन-पूसवाले फूल में ही फल लगता है, शेष यों ही झड़ जाते हैं। आश्विन के मध्य से लेकर कार्त्तिक के अंत तक जड़ों को एक हाथ गहरी खोदकर १५-१६ दिन के लिये खुला छोड़ दे, जिससे धूप और हवा अच्छी तरह लग सके। सूखी, घनी और रोगी शाखों को छाँट देना चाहिए। धूप लगने के बाद जड़ों में खाद देकर बंद कर देना चाहिए। फल लगने और पकने के बीच में ३-४ बार पौधों को सींचना चाहिए। इसकी फ़सल अच्छी आय देती है।

फालसा

यह भारतीय फल है। अच्छी भूमि होने और पौधे की भले प्रकार सेवा करने से पेड़ खूब बढ़ता और फलता है। उत्तरी भाग में यह बहुत होता है, और बिना विशेष प्रयत्न के उगते और बढ़ते हैं। इसका फल बैंगनी रंग का, अल्प मधुर, स्वादिष्ट और अग्निदीपक है। पके फल रुचिवर्द्धक होते हैं। इसका शरबत लाभप्रद और गुणकारी होता है।

बरसात में बीज से पौधे उगाए जाते हैं, फिर एक साल तक जखीरे में रखते हैं। इसके पौधे १०-१२ हाथ के अंतर पर लगाए जाते हैं। गड्ढे २-२½ हाथ घेरेवाले और इतने ही गहरे होने चाहिए। गड्ढे में भी बरसात में ही पौधे रोपे जाते हैं। चैत-बैसाख में फूल आता और बरसात के आरंभ में ही पक जाता है। इस ओर कृषकों का ध्यान होने से अच्छी उन्नति और आय हो सकती है।

शहतूत

यह भी भारतीय फल है। इसके कुछ फल हलके हरे रंग के तथा पकने पर सफ़ेद-पीले-से हो जाते हैं। ये साधारणतया १-१½ इंच लंबे होते हैं। यह स्वादिष्ट, सरस और मीठा होता है। दूसरे प्रकार का फल २½ से ४ इंच तक लंबा होता है। तीसरे प्रकार का फल कालिमा लिए लाल होता है। इनमें मिठास कम होती है, और खट्टे अधिक होते हैं।

ये ग्रीष्म-प्रधान, समतल भूभाग में तथा ५ हजार फीट ऊँचे पहाड़ों पर भी होते हैं। और, सब प्रकार की मिट्टी में पैदा हो जाते हैं, पर दुमट मिट्टी इसके लिये अधिक उपयुक्त है।

इसके पेड़ १५-१६ हाथ से लेकर २०-२२ हाथ तक बढ़ते हैं।

भूमि की तैयारी बरसात से पहले की जाय। १२-१५ हाथ की दूरी पर पौधे लगाए जायँ। इसके लिये गड्ढों का घेरा २ हाथ का होना चाहिए, पर गहराई १½ हाथ ही पर्याप्त है। इन गड्ढों में गोबर और गोशाला के बुहारन की खाद देनी चाहिए।

अँखुएवाली पुष्ट डालें पूस-माघ के महीने में अंकुरदान में लगानी चाहिए, फिर जखीरे में पालन करके बरसात में गड्ढों में रोप देना चाहिए। इस समय डाल से भी पौधे उगाए जाते हैं। उसी समय सिंचाई भी करते रहना चाहिए। ४-५ वर्ष में ये फल देने योग्य हो जाते हैं। चैत-बैसाख में फल आते हैं। यह फल गर्मी की ऋतु में दोपहर के समय स्वादिष्ठ लगता है। इससे तृषा शांत और मन प्रसन्न होता है। इसकी खेती अच्छी आय देती है।

नासपाती

यह सेब की तरह शीत-वीर्य और मधुर-रस-विशिष्ट फल है। कच्ची दशा में खट्टा होता है, पर पक्के होने पर मीठा

लगता है। खाने में कड़ा होता है। इसके पेड़ सेब से बड़े होते हैं। यह भी सेब की तरह शीत स्थानों तथा कँकरीली-पथरीली भूमि में पैदा होता है। संभव है, गर्म स्थानों में भी इसकी हिफ़ाज़त करने से ये पौधे उगने और फल देने लगें।

पंजाब, काश्मीर, सहारनपुर, पेशावर, शिमला, दार्जिलिंग और आसाम में इसकी खेती ख़ूब होती है। इसके तैयार करने की प्रणाली बिलकुल सेब की ही तरह होती है। इसके पौधे १४-१५ हाथ के अंतर पर लगाए जाते हैं। इनका आरोपण पूस के महीने में किया जाता है। ये समतल भूमि में होते हैं। विलायती नासपाती यहाँ नहीं होती।

क़लमी पेड़ ६-७ वर्ष में फल देते हैं। आषाढ़ से भादों तक फल पुष्ट हो जाता है। इसके फल पेड़ पर नहीं पकते, अतः बढ़ने पर तोड़ लिए जाते हैं। फिर रखने से पक जाते हैं।

कार्त्तिक-अगहन में फूल आने पर डालें छाँट दी जाती हैं। उसी समय इसकी जड़ें ७-८ दिन के लिये धूप-हवा देने के लिये खोल दी जाती हैं। फिर सूखी खली, गोबर की खाद और हड्डी का चूरा मिलाकर मिट्टी से दाब देते हैं। फूल झड़ने और फल लगने पर पानी दिया जाता है। समय-समय पर जाड़ों और गर्मियों में सिंचाई और गुड़ाई करते रहना चाहिए। इसकी फ़सल में लागत कम और आय अच्छी होती है।

खिरनी

यह नीम के पेड़ से मिलता हुआ होता है। फल भी निबौरी की ही शकल का होता है। पर इसका फल मीठा होता है और निबौरी कड़ुई। इसका गूदा दूध के समान होता है, इसीलिये इसको खिरनी कहते हैं। पंजाब, युक्त प्रांत, मध्य-प्रदेश और बिहार में सर्वत्र इसके पेड़ पाए जाते हैं। पर इसका प्रचार कम है। यदि इसकी खेती पर ध्यान दिया जाय, तो फ़सल लाभदायक हो सकती है।

ये पौधे मैदान में होते हैं, पहाड़ पर नहीं उपजते। इनके लिये दुमट भूमि अच्छी होती है। बरसात में बीज बोकर उगाए जाते हैं। १-१॥ मास में उगते हैं। फिर एक वर्ष तक जखीरे में रखकर परवारिश की जाती है। जब इसके पौधे १-१॥ हाथ के हो जायँ, तब गड्ढों में रखने चाहिए। इसके पौधे १५-१६ हाथ के अंतर पर लगाए जाते हैं। आषाढ़ में गड्ढों में रखना चाहिए। रखने से पहले गड्ढों में खाद दे देनी चाहिए। पानी कम हो, तो सिंचाई करनी चाहिए। इसके पेड़ जाड़े में फूलते और गर्मी में फल देते तथा पकते हैं।

बेल

यह भारत का फल है। इसके पत्तों का हिंदू लोग शिव की पूजा में उपयोग करते हैं। इसे श्री फल भी कहते हैं। बेल तूत की तरह समतल भूमि से लेकर ४००० फ़ीट की ऊँचाई तक लगते हैं। ये छोटे-बड़े कई तरह के होते हैं। बड़े

फ़ाग़ज़ी, छिलका पतला और उत्तम होते हैं। इसका मुरब्बा-डालते हैं। पका बेल भोजन से पहले खाना चाहिए। यकृत दोष तथा कंवल-रोगवाले के लिये यह बहुत लाभदायक होता है। यह पाचक और रेचक दोनो है। एक बेल पूरे दिन-भर के भोजन की पूर्ति कर देता है। छोटे बेल खमीरे के काम आते हैं। इसे तंबाकू में डालकर उसका लस और सुगंध बढ़ा देते हैं। पका बेल सड़ने पर तीव्र सुगंध देता है, अतः बेल और बेर दोनो को ही सड़ाकर खमीरा बनाते हैं। इसका पेड़ ३०-३५ हाथ ऊँचा, घनी शाखावाला और काँटेदार होता है। इसके पौधे २०-२२ हाथ की दूरी पर लगाए जाने चाहिए। इसके लिय जो गड्ढे बनाए जाते हैं, उनका घेरा २ हाथ का होता है, और उसकी गहराई भी इतनी ही रक्खी जाती है।

बरसात में अच्छी जाति का बीज अंकुरदान में लगाना चाहिए। फिर जखीरे में पालन करके कुछ बढ़ने पर गड्ढों में आरोपित कर देना चाहिए।

इसकी शाखों तथा जड़ों से नई शाखें भी फूट निकलती हैं। उन्हें भी अलग पौधे के रूप में लगाया जा सकता है। बीज की अपेक्षा जड़ से लिए गए पौधे जल्द पलते और बढ़ते हैं, और फल भी इन्हीं में जल्दी निकलता है। ७-८ वर्ष में ये पौधे फल देने लगते हैं। बरसात के अंत में बेल फूलता और चैत में फल पकने लगता है। ऋतु और स्थान

भेद से इसके फलने-फूलने में अंतर पड़ जाता है। इसके नए पौधे की परिचर्या कुछ अधिक करनी पड़ती है। इससे भी आय अच्छी हो सकती है।

आलू बुखारा

इसका स्वाद खट्टमिट्ठा होता है। इसकी चटनी और अचार अच्छा बनता है। यह उत्तम फल है। दार्जिलिंग के पहाड़ों में यह खूब होता है। इसके पके फल सुखाकर भी रक्खे जाते हैं।

इसके लिये सरस दुमट भूमि अच्छी होती है। इसके पौधे १५-१६ हाथ के अंतर पर लगाने चाहिए। जाड़े में इसके पौधे उगाए जाते हैं। इसे बीज के अलावा डाल-क़लम तथा जोड़-क़लम से भी तैयार करते हैं। क़लम भी जाड़ों में ही तैयार की जाती है। पर बीज बरसात में उगाए जाते हैं।

अगहन-पूस के महीने में २-२॥ हाथ का घेरा और इतना ही गहरा गड्ढा खोदना चाहिए। उसमें नई मिट्टी और गोशाला के बुहारन की खाद भर देते हैं। इन गड्ढों में माघ के महीने में पौधे स्थायी रूप से लगा दिए जाते हैं। क़लमी फल अच्छे होते हैं। ये पौधे ५-६ वर्ष में फल देने लगते हैं। चौथे वर्ष माघ-फागुन के महीने में डालें छाँट देनी चाहिए। इसी समय धूप और हवा देने के लिये ८-१० दिन तक जड़ें खोल देनी चाहिए। फिर गोबर की खाद, पुटाश, हड्डी का चूरा और मिट्टी देकर उन्हें ढक देना चाहिए। इसके १०

दिन बाद सिंचाई कर देनी चाहिए। चैत-बैसाख में इसमें फूल लगते हैं। इसके फलों का अच्छा प्रचार है। सूखे और ताज़े दोनो प्रकार के फलों की बिक्री खूब होती है। इससे पैसा भी अच्छा मिलता है।

आड़ू या पीच

यह भारत का फल नहीं है, फिर भी पहाड़ी और ऊँची तथा समतल भूमि में सर्वत्र पैदा होता है। इसका फल स्वादिष्ठ और पाचक होता है। दक्षिणी भारत, मध्य-भारत और युक्त प्रांत में इसकी बहुत खेती होती है। हलकी दुमट भूमि इसके लिये बहुत उपयुक्त है। इसके लिये २-२॥ हाथ घेरे के और इतने ही गहरे गड्ढे बनाने चाहिए। भूमि की तैयारी बरसात में करनी चाहिए। जाड़े में इसकी पौद तैयार करनी चाहिए। इसका बीजू पौधा और जोड़-क़लम दोनो ही लगाए जाते हैं। बीजू पेड़ में क़लमी अँखुआ लगाने से पौधा अच्छा पनपता और बढ़िया फल देता है।

कुछ दिन जखीरे में रखकर पौधे को स्थायी रूप से गड्ढे में लगाना चाहिए। महीने में दो-तीन बार सिंचाई करते रहना चाहिए। ४-५ वर्ष में पौधा फल देने लगता है। माघ-फागुन के महीने में इसमें फूल आते हैं। बरसात के बाद जड़ें खोल देनी चाहिए। जिससे १-१॥ सप्ताह तक धूप और हवा अच्छी तरह लग सके। फिर गोबर, हड्डी का चूरा और नई

मिट्टी से जड़ों को दबा देना चाहिए। इसके बाद सिंचाई कर देनी चाहिए।

फल लगने पर फिर सिंचाई कर देनी चाहिए। और, कुछ दिनों के अंतर से सींचते रहना चाहिए। इसकी फ़सल लाभ-दायक हो सकती है। लोग इससे पर्याप्त लाभ उठाते हैं।

अखरोट

यह भारतीय फल नहीं है, फ़ारस से भारत में आया है। भारत में भी हिमालय के जंगलों में होता है। शिमला, मंसूरी में भी जंगलों में पैदा होता है।

पिस्ता, बादाम, किशमिश आदि की तरह यह भी एक मेवा है। इसका छिलका कड़ा होता है, पर मींगी स्वादिष्ठ और पौष्टिक होती है।

इसके लिये हलकी बलुआही दुमट भूमि अच्छी होती है। इसके पेड़ बड़े और ऊँचे होते हैं। युक्त प्रदेश, बिहार और मध्य-प्रदेश में भी इसकी फ़सल होती है।

इसके पौधे १५-२० हाथ के अंतर पर लगाने चाहिए। लगाने का समय बरसात और जाड़ा दोनों ही इसके लिये उपयुक्त हैं। इसके बीज उगाते हैं। पौधा उगाने के लिये अंकुरदानी सरस रक्खी जानी चाहिए। शहरों में इसकी काफ़ी खपत होती है।

बादाम

यह सीमा-प्रांत, काश्मीर, अफ़ग़ानिस्तान और पंजाब में

रूप होता है। इसके पौधे १५-१६ हाथ ऊँचे होते हैं, और गर्म स्थानों में बहुतायत से लगाए जाते हैं। इसकी खेती ऊँची, खाद-युक्त, सरस भूमि में ख़ूब होती है। पतले छिलकेवाले बादाम काग़ज़ी कहलाते हैं। देशी बादाम के नाम से जो फल प्रसिद्ध है, वह मलाया का है। इसका पेड़ ३०-३५ हाथ ऊँचा होता है। पहले प्रकार के बादाम मिस्र, उत्तरी आफ्रिका और एशिया माइनर से भारत में लाए गए हैं।

बंगाल में भी इसकी फ़सल हो सकती है, तथा यहाँ भी की जा सकती है। पर इसकी खेती यहाँ विधिवत् नहीं की जाती बीज बरसात में लगाया जाता है। ५-६ वर्ष में ये फूल देने लगते हैं। देशी बादाम दो ही वर्ष में फल देने लगता है।

यह बड़ा ही पौष्टिक, लाभप्रद और शक्ति-वर्द्धक मेवा है। विद्यार्थियों के लिये इसका सेवन बहुत गुणकारी होता है। इससे दिमाग़ पुष्ट और ताज़ा रहता है। स्मरण-शक्ति को बढ़ाता तथा मेधा-शक्ति को सबल कर देता है। अतः इसका सेवन अवश्य करना चाहिए।

भारत में इसकी खपत सब मेवों से अधिक होती है, और दिन-पर-दिन इसका उपयोग बढ़ता जाता है। अतः इसकी फ़सल को बढ़ाना अवश्य श्रेयस्कर होगा।

पेड़ों के रोग

अच्छे प्रकार से पेड़ों की परवरिश करने से रोग नहीं होता। परंतु प्राकृतिक साधनों में त्रुटि हो जाने और पोषण की खराबी से इनमें रोग लग जाते हैं, अतः उन पर विचार करना आवश्यक है। रोग दो प्रकार के होते हैं—(१) उपाय, साध्य, (२) असाध्य। ओला, पाला आदि रोग मनुष्य-शक्ति से बाहर की बात है। इन्हें असाध्य रोग कहना चाहिए।

उपाय-साध्य रोग दो प्रकार के होते हैं—(१) प्राणिज- (२) वानस्पतिक। ये रोग किसान की असावधानी से हो जाते हैं। सफ़ाई करने और देख-रेख रखने से रोग का परिमाण कम हो जाता है।

चिरचिरी या बिदारीकंद आदि की जड़ें दृढ़ होती हैं। ये पेड़ों का रस शोषण करके उन्हें बिगाड़ देती हैं। इससे रस दूषित हो जाता है। अतः इन्हें उखाड़ फेंकना चाहिए, और खेत में जमने न देना चाहिए।

दीमक की मा एक दिन में ८० हजार अंडे देती है। दीमक वहीं होती है, जहाँ घास-पात भूमि में सड़ने लगता है। अतः सफ़ाई करते रहना चाहिए, तो दीमक नहीं लगती। कच्ची खाद से भी दीमक लग जाती है, अतः खूब सड़ने पर पाँस दी जाय। वानस्पतिक रोग में भी सफ़ाई से लाभ होता है।

आम, कटहल, लीची आदि में बहुत-सी उपशाखाएँ निकल आती और पेड़ की शाखा में जड़ पकड़ लेती हैं। ये सदैव हरी-भरी रहती तथा पेड़ से रस खींचती रहती हैं। ये उपशाखाएँ गर्मी में भी हरी-भरी रहती हैं। इन शाखाओं को बाँझ कहते हैं। पर ये वृक्ष का सार भाग तो खींचती ही रहती हैं, अतः इन्हें जमने न देना और उखाड़ते रहना चाहिए। जिस शाख में ऐसी उपशाखा हो, उसे भी काटकर फेंक देना चाहिए, नहीं तो फिर पनपने की संभावना है। ऐसे पौधे बहुधा पक्षियों की विष्ठा आदि से उत्पन्न हो जाते हैं।

अमर बेलि को पौधे पर कभी न रहने देना चाहिए, नहीं तो यह पेड़ को सुखाकर बहुत कमजोर बना देती है। यह एक बिना जड़ और पत्ते की पीली बेलि होती है, जो पेड़ों का रस चूसकर बढ़ती रहती है। इसे कदापि पौधे पर न रहने दे। कोई-कोई झालरदार पौधे बढ़कर समीप के पौधे को दबा लेते हैं, अतः उन्हें छाँटते रहना चाहिए।

समझदार और चतुर किसान पहले ही समझ जाते हैं कि पौधे में कौन-सा रोग होनेवाला है, और उससे सावधान होकर उसका इलाज कर लेते हैं। पर किसान अपना ज्ञान दूसरों को नहीं देते, इससे यह निदान और ज्ञान उनके जीवन के साथ ही नष्ट हो जाता है।

दीमक के लिये यह भी इलाज है कि फ़िनाइल को पानी में मिलाकर पौधे में डाल दे, तो दीमक नष्ट हो जायगी।

तंबाकू का घोल छिड़कने से भी बहुत लाभ होता है। गंधक का चूर्ण तथा चूना मिलाकर छिड़कने से दीमक आदि कुछ रोग नष्ट हो जाते हैं।

कंडी की राख को मिट्टी के तेल में घोलकर छिड़कने से कई प्रकार के हानिप्रद जंतु नष्ट हो जाते हैं। कड़ु आयल का घोल भी पेड़ों के बहुत-से रोगों के लिये लाभप्रद है।

मिट्टी का तेल तथा तूतिया का घोल भी कुछ रोगों पर अच्छा काम देता है।

पेड़ों का छाँटना—पत्ते अधिक होने से पौधों को रोशनी आदि पूरे तौर पर नहीं मिल सकती। अतः बढ़े हुए पत्ते छाँट देने चाहिए, इससे पौधे में सुंदरता भी आ जाती है। ताड़ और नारियल-जैसे पौधों में भी कुछ छटनी की आवश्यकता होती है।

व्यर्थ बढ़नेवाले पौधों की कुछ फैली हुई जड़ें छाँट दी जाती हैं। इससे व्यर्थ का विस्तार रुक जाता है। उसके बाद पौधे में खाद दे देनी चाहिए, जिससे उसकी बाढ़ न मारी जाय। इस प्रकार दवा करने, सफ़ाई करने और उचित रूप से छटनई और देख-भाल करने से पौधे खूब पनपते और स्वस्थ रहते हैं। अतः इनका सावधानता-पूर्वक निरीक्षण करते रहना चाहिए। और, जो रोग ज्ञात हो, उसका तुरंत इलाज कर देना चाहिए।